श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीहरिलीला शतक

श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज विरचित

प्रकाशक

लक्ष्मीनारायणदास
श्रीविष्णुप्रियागौरांग आश्रम
वनखण्डी महादेव के निकट
श्रीराधाकुण्ड (मथुरा)
+91 9897457066, 7895028887

प्रचारक

श्रीगौरगोपालदास बाबा–7895028887
नरोत्तमदास–9953510358
राघवदास–8920797423, मदनमोहनदास–9760228678

प्रकाशन तिथि : अगस्त, वर्ष २०२५

NAVRANG OFFSET PRINTERS

A Complete Printing & Book Binding etc.
9975787982

TYPIST & GRAPHICS DESIGNER

Brijbhoosan Pathak 8881982106, 8630192318

भूमिका

श्रीश्रीराधागोविन्द देव की असीम अनुकम्पा से यह 'श्रीहरिलीला शतक' नामक ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है। इसके रचयिता श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज हैं। आप ब्रजभाषा के एक विशिष्ट कवि हैं।

आपका जन्म १ जनवरी, सन् १९४४ को हुआ। आपने ब्रजभाषा में भक्तिपरक अनेक ग्रंथों की रचना की है। आपको श्रीकाशीप्रसाद श्रीवास्तव (केलि मंजरी) जैसे विद्वान् वैष्णव का सत्संग प्राप्त हुआ। गौड़ीय सम्प्रदाय के विख्यात संत श्रीश्रीराधा-रमणचरणदास बाबाजी महाराज की परम्परा में श्रीदीनहरिदास बाबाजी महाराज की शरणागति प्राप्त हुई।

आपने श्रीगुरुदेव की कृपा प्राप्त कर श्रीहरिनाम शतक, श्रीहरिलीला शतक, श्रीचैतन्यचरित मानस, श्रीनिताईगौर शतक, श्रीसीताराम शतक, श्रीकरणीचरित मानस, श्रीहरिनाम चालीसा, श्रीसद्गुरु चालीसा, सर्वशक्ति चालीसा इत्यादि ग्रंथों की रचना की।

इनको पढ़कर श्रीराधामाधव, श्रीनिताईगौर, श्रीगुरुवैष्णव के श्रीचरणारविन्द में निर्मल रति उत्पन्न होती है। इन ग्रंथों का व्यापक प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से इनका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है और जनसाधारण को अति सरल, सहज, बोधगम्य अर्थ समझाने हेतु इसका हिन्दी अनुवाद भी दिया जा रहा है। इससे अधिकांश लोग लाभान्वित हो सकेंगे। इसमें कोई भूल-त्रुटि होने पर भक्तवृन्द क्षमा करें।

-लक्ष्मीनारायणदास

ग्रंथकार का संक्षिप्त जीवन परिचय

परिचय- गौड़ीय वैष्णव ब्रजभाषा कवि

नाम- श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज

जन्मकाल- १ जनवरी १९४४

जन्मस्थान- बौंली बिशनपुरा, सवाई माधोपुर, जयपुर (राजस्थान)

माता- श्रीमती सुखबाई

पिता- श्रीहिंगलाज दानसिंह (भूतपूर्व जागीरदार, जयपुर)

पितामह- ठा० श्रीईश्वरी दानसिंह

गुरुदेव- श्रील दीनहरिदास बाबाजी महाराज

ग्रंथ रचनायें- श्रीहरिनाम शतक, श्रीहरिलीला शतक, श्रीनिताईगौर शतक, श्रीचैतन्यचरित मानस, श्रीसीताराम शतक, श्रीकरणीचरित मानस, श्रीहरिनाम चालीसा, श्रीसद्गुरु चालीसा, सर्वशक्ति चालीसा इत्यादि।

रचनाकाल- सन् १९००-२००० पर्यन्त

सम्मान- (१) राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी द्वारा जोधपुर में सम्मानित २४/१२/१९९५, (२) श्रीगौरांग महाप्रभु मन्दिर ट्रस्ट जयपुर द्वारा सम्मानित २३/११/१९९७

उपाधि- (१) 'साहित्य निधि' (भारतीय मन्दिर संस्था जयपुर द्वारा प्राप्त २३/१०/१९९३), (२) 'वाग्विभूषण' (अनुग्रह अकादमी जयपुर द्वारा प्राप्त १८/९/१९९९)

समाज सेवा- (१) सचिव श्रीकरणीकला संस्थान जयपुर, (२) सचिव संचालन समिति चारण छात्रावास जयपुर, (३) महा सचिव चारण सभा जयपुर

निवास- १३६, करणीकुंज, राधागोविन्द कॉलौनी, ढहरा का बालाजी (जयपुर-१२)

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
१.	जय गोविन्द गोपाल गुसाईं	६
२.	मोरे सब विधि आनन्द कीन्हो	६
३.	हमारे इष्ट लाड़ली लाल	१०
४.	जय राधे जय राधे-राधे (कीर्तन)	१०
५.	मोरी बाँह गहो गोविन्द	११
६.	अपनो करि राखो गोपाल	१२
७.	अब मोहि राखि प्रफुल्ल गोपाला	१२
८.	सुन गोविन्द सुनावन मोरी	१३
९.	गोविन्द प्रीत रीत तुम जानी	१४
१०.	गोविन्द शब्द द्रव्य के दानी	१४
११.	गोविन्द तुम ठाकुर हम दासा	१५
१२.	गोविन्द अपनो बिरद विचार	१६
१३.	गोविन्द अनन्त अनुग्रह तोरे	१६
१४.	प्रभु मोहे चरनन ते लिपटइयो	१७
१५.	प्रभुजी अब न सरै बिसराये	१८
१६.	प्रभुजी सुनियो दीन-पुकार	१८
१७.	मेरो हित कीजो गोपाल	१९
१८.	कछु ऐसी कर गोपाल	२०
१९.	रे मन लागि हरि के चरना	२०
२०.	हरि, तुम निशदिन रहियो नेरे	२१
२१.	जिनके हरि चरनन की प्रीत	२२
२२.	हरि तुम अस करूणा कस कीन्ही	२३
२३.	हरि तुम सकल लोक आधार	२३
२४.	रखियो निज चरनन की ओट	२४
२५.	कोटिन-कोटि अनुग्रह तोरे	२५
२६.	सब करि एक कहि फल मैं चाहूँ	२५
२७.	सुनहु श्याम इक विनती मोरी	२६
२८.	मन की सुन माधव मधुवन के	२७

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
२९.	प्यारे उरझे को सुरझा रे	२७
३०.	किशोरी मोसे कहा अपराध भयो	२८
३१.	पाये प्रीतम प्राण पियारे	२८
३२.	जे नर हरि संग प्रीत लगाई	२९
३३.	हरि के रीझन की गति न्यारी	३०
३४.	हरि तुम सब ही भाँति हमारे	३०
३५.	हरि संग उरझि गये री नैना	३१
३६.	सुने री मैंने हरि करूणा की खान	३२
३७.	गोविन्द भक्तन पाछैं डोलै	३२
३८.	गोविन्द प्रेमिन के हित आये	३३
३९.	सखी री मेरे गोविन्द गुन की खान	३४
४०.	औगुन देखत नाहीं श्याम	३५
४१.	गहत गुन गुनग्राही गोपाल	३५
४२.	सुने री हम अति कोमल गोपाल	३६
४३.	सुने री मैंने भगत बछल गोपाल	३७
४४.	जे जन प्रेम के फन्द परे	३७
४५.	प्रेम समन्द भर्‌यो अति भारी	३८
४६.	प्रेम को अद्‌भुत भयो निदान	३९
४७.	प्रेम को मत कीज्यो ब्यौपार	३९
४८.	मैं जननी नित लाल खिलाऊँ	४०
४९.	मदवा प्रेम-भटी का पी रे	४१
५०.	कैसो रसिक हियो रसिकन को	४१
५१.	को मन युगल चरन को ध्यान	४२
५२.	गोविन्द को गुणगान करो री	४३
५३.	आली भाव-भाव की बात	४३
५४.	खेलत यशुमति-अजिर अजन्मा	४४
५५.	पैंजनियाँ सुर छेड़े रुनझुन के	४५
५६.	हरि को बाँध थकी महतारी	४५
५७.	मो मन भावत नन्दकिशोर	४६

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
५८.	फिर बाजी मधुबन में मुरली	४७
५९.	डारी रे तैने केसी मोहिनी डारी	४७
६०.	हम तो चाकर श्याम-सखी के	४८
६१.	करो मन हरि-दासन को संग	४९
६२.	राधे संग नित झूला झूलैं	४९
६३.	राधे जू के चरनन की बलिहारी	५०
६४.	फाग बिरज में भारी रे रसिया	५१
६५.	करो मन श्रीवृन्दावन वास	५१
६६.	मोहे वृन्दावन अति भायो	५२
६७.	बिहरत ब्रह्म विरज के बाग	५३
६८.	रे मन ब्रज रज को कर वन्दन	५३
६९.	ब्रज में ब्रह्म गयो बौराय	५४
७०.	लतन में लुकत लाड़ली-लाल	५५
७१.	बाँध्यो ब्रह्म बिरज की नारी	५५
७२.	मैं तो सब विधि साधन हीन	५६
७३.	मैं गिरही साधक कहलाऊँ	५७
७४.	कैसी हीन दशा या मन की	५७
७५.	जिनके हिय दीनता आई	५८
७६.	मेरो मन इत आवै उत जावै	५९
७७.	विनती सुनियो मन-महाराज	६०
७८.	मन रे बहु सोयो अब जाग	६०
७९.	मन रे सेवन कर एकान्त	६१
८०.	गहो रे मन सार की बात गहो	६२
८१.	प्रभुजी कैसे बनूँ मैं योगी	६२
८२.	गोविन्द केहि विधि भजन बनेगौ	६३
८३.	जब लौं सुधि बाकी या तन की	६४
८४.	नर तेरी केहि विधि पार परै	६४
८५.	ते जन केहि विधि हरिगुन गावहिं	६५
८६.	साधो भाई गहन गति कर्मन की	६६

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
८७.	निज में अगणित ऐब भरे री	६६
८८.	का दिन अपने दोष लखैगो	६७
८९.	मैं अवगुन की खान कहाँ ते सदगुन लाऊँ	६८
९०.	मो सम कौंन मूढ़ या जग में	६८
९१.	मै अति भाव-विहीन	६९
९२.	प्रभु मोहि जाति बार कब करिहौं	७०
९३.	शरणागत राखि हरि	७०
९४.	अब मोहि राखि शरण गोपाल	७१
९५.	को पै अभिवादन कूँ जइये	७२
९६.	प्रभु को प्रिय लागै सोई करिहौं	७२
९७.	माया! अब दाव न लागै तेरो	७३
९८.	अब मैं कौन देव पै जाऊँ	७४
९९.	माई री मैं तो अविचल नाथ वरयौ	७४
१००.	अब मैं का संग बैर रखाऊँ	७५
१०१.	जब ठान लई ब्रज जावन की	७६
१०२.	करूणामय ठाकुर मेरो	७७
१०३.	गोविन्द हम कीन्ही तुम जानी	७७
१०४.	गोविन्द जा पै कृपा तिहारी	७८
१०५.	हरि जि का संग प्रीत करूँ	७८
१०६.	रहिये हरि चरनन की छाया	७९
१०७.	जे जन हरि संग प्रीत लगाई	८०
१०८.	राधा तो बिन गोविन्द आधा	८०

समर्पण

भाव-सुमन उर में लिये, ठाड़ो हूँ तव द्वार।
अरूण-करूण अंखियन सौं, लीजों नेंक निहार।।
प्रेमिन के प्राण पालते, रसिकन-राखनहार।
'श्रीअलबेली माधुरी, शरण' गुनन-आगार।।
ग्रंथ रच्यौ 'लीला शतक', लायो मस्तक धार।
करूँ समर्पित आपको, कर लीजो स्वीकार।।
मोरे उर आनन्द करो, हियो रहै उजियार।
वरद हस्त मो सिर धरो, करूणा रूप तुम्हार।।
सरस कुँज सुख-पुँज है, सुखद सरस दरबार।
सरस छवि मन भावनी, 'बिरजदास' बलिहार।।

मंगलाचरण

मंगल-मूरति राधिका, मंगलमुख श्रीश्याम।
मंगल गोपी-ग्वाल गऊ, मंगल है ब्रजधाम।।
मंगल गोवर्धन गिरि, मंगल वृन्दा नाम।
मंगल यमुना धार सदा, मंगल ब्रज की बाम।।
मंगल ब्रज के तरुलता, मंगल कुँज ललाम।
मंगल रज है बिरज की, मंगल सिंगरी ठाम।।
मंगल राधा कुण्ड है, कृष्ण कुण्ड अभिराम।
मंगल झुण्ड सखीन के, मंगल आठों याम।।
मंगल बरसानो सखी, मंगल है नंदगाम।
मंगल ब्रज के तीर्थगन, मंगल हरि को नाम।।

पद (१)

जय गोविन्द-गोपाल गुसाईं।
धरि गुरु रूप अवतरे धरणि, भक्त उधारण ताईं।।
हृदय-कमल धांरू पद-पंकज, निशदिन ध्यान धराहीं।
हृदयकमल में दीज्यो दर्शन, उर आनन्द समाहीं।।
जा दिन होत जीव शरणागत, सिगरौ संशय जाहीं।
कण-कण में करूणानिधि तेरो, करूणा रूप लखाहीं।।
हे प्रकाश! पावन परमेश्वर, जे घर उदित रहाहीं।
जगमग-जगमग होत हिया में, तिमिर नाश हो जाहीं।।
मोह-पाश माया के बन्धन, छिन में देत कटाहीं।
करि करूणा 'ब्रजदास' जीव पर, जीवन मुक्त बनाहीं।।

श्रीगोविन्द गोपाल गुसाईं की जय-जयकार हो! आप गुरु रूप में अवतरित होकर जीवों के उद्धार करने के लिये प्रकट हुए हो। अपने हृदय-कमल में मैं आज आपके पदपंकज का दिवारात्रि ध्यान करता हूँ, आपके चरणकमलों के ध्यान से मेरे हृदय का तम नष्ट हो जाता है। मोह-पाश के बन्धन कट जाते हैं। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "हे प्रभु! आप कृपा करके मुझे भव मुक्त कीजिये।"

पद (२)

मोरे सब विधि आनँद कीन्हों।
अबकी बेर गुरु करूण बरती, भगति-पदारथ दीन्हों।।
करूणा-पंथ दियो करूणामय, कुटिल-भाव हर लीन्हों।
पाथर से मोहे सरस बनायौ, हृदय कियो रसभीनों।।
मैं तो सब विधि दीन-हीन हो, मन को अति मलीनों।
श्रीगुरुवर चरनन बलिहारी, दया लागि मोहि चीन्हों।।
जग ते खींच लियो मन मेरो, नामाश्रय धर दीन्हों।
श्रीगोविन्द की गोद बिठायो, सकल भांति सुख कीन्हों।।
'बिरजदास' तो बह्यौ जात हो, कर बढ़ाय गह लीन्हों।

केश पकरि भव-जल ते काढ्यौ, काढ़ि अभय कर दीन्हौ।।

मुझे आपने सब प्रकार से आनन्दित किया है और गुरु रूप में आकर भक्ति प्रदान की है। भक्ति-पथ को दिखलाया है और कुटिल भाव को हर लिया है। मैं गुरु चरणों की बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने कृपा करके श्रीगोविन्द की गोदी में बैठाकर मुझे सुख प्रदान किया है। श्रीब्रजदासजी कहते हैं कि- "आपने भवसागर से निकालकर अभय पद प्रदान किया है।"

पद (३)

हमारे इष्ट लाड़ली-लाल।
उर में धरे युगल पद पंकज, नैनन छवि रसाल।।
भाल तिलक गल कण्ठी सोहै, कर तुलसी की माल।
सुमिरन ते श्रीयुगल रिझावें, राधा-माधव लाल।।
करूणामयी सखी के अनुगत, रह के भये निहाल।
कुँज महल की टहल चाकरी, पाय गये तत्काल।।
रसिकन के रखवारे दोनों, प्रेमिन के प्रतिपाल।
महाभाव रूपी श्रीराधे, परम पुरुष नंदलाल।।
नित 'ब्रजदास' अभय सो डोलूँ, कहा करैगौ काल।
प्रबल भरोसो कुँवर-कुँवरि को, छिन-छिन करत संभाल।।

मेरे इष्ट तो लाड़ली लाल श्रीराधाकृष्ण हैं। मैंने अपने हृदय में युगल के पदपंकज धारण कर लिये हैं, नैनन में उनकी मैंने मनमोहनी छवि बसा ली है, मस्तक पर तिलक और कण्ठ में तुलसी माला धारण कर ली है। अब कुंज महल की चाकरी मिल गई है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मुझे कुंवरि और कुंवर का प्रबल भरोसा हो गया है।"

पद (४)

जय राधे जय श्रीराधे।
करूणा-कृपा किशोरी की तजि, कौन देव को आराधे।।
धरियो करूणा कान स्वामिनी, छिन-छिन टेर रहे तुमको।

हे कृष्ण प्रिया! हे परम तत्त्व, हे महाभाव रूपा राधे।।
कब से कर फैलाये ठाड़े, द्वार स्वामिनी के आगे।
दीन-हीन हम पतितन पर, अपनी करूणा को बरसा दे।।
भाव-प्रसून हृदय में लेकर, बृज की गलियन में डोलैं।
हे नवल प्रिया! तव रीझन के हित, पैरन में घूँघरू बाँधे।।
ये तन पर्‌यौ रहै या जग में, मन ते चरनन को पाऊँ।
'बिरजदास' को देह-भाव ते, भाव-देह में पहुँचा दे।।

श्रीराधारानी की जय-जयकार हो! करूणामयी श्रीकिशारीजी को छोड़कर अब किस देवता की आराधना की जाये? स्वामिनी जू श्रीकृष्ण की प्रिया हैं। हे स्वामिनी! मैं कब से आपके द्वार पर खड़ा हुआ हूँ? ब्रजदास को देह भाव से ऊपर उठाकर सिद्ध मंजरी भाव में पहुँचा दो।

पद (५)

मोरी बाँह गहो गोविन्द।
ब्रज-बनितन के प्राण पियारे, श्रीवृन्दावन चंद।।
का दिन चित् शुद्धि होवैगी, कटहिं कौन दिन फन्द।
बेगि हरो करूणामय स्वामी, राग-द्वेष के द्वन्द।।
का दिन मोर हृदय में अहिहौ, सुनियौ आनँदकन्द।
आन्हिक को सुख का दिन पई हौं, कब लईहौं आनन्द।।
मैं श्रीचरनन में आयो हूँ, तोरि सकल सम्बन्ध।
एक अनाथ, सनाथ कीजियो, सरस श्याम सुखकन्द।।
मैं 'ब्रजदास' चल्यौ छवि निरखन, उर में अति आनन्द।
यमुन-पुलिन ठाड़े मिल जईयौ पाऊँ नयनानन्द।।

हे गोविन्द! आप मेरी बाँह पकड़ लीजिये। ब्रजगोपियों के प्राण पियारे व श्रीवृन्दावन के चन्द्र हो; किस दिन मेरा हृदय शुद्ध होगा और मेरे फन्द नष्ट होंगे? हे प्रभो! आप मेरे राग-द्वेष के द्वन्द को मिटा दीजिये। मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे आप सनाथ कीजिये। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "मेरे हृदय

में अति आनन्द हो रहा है। आप यमुना पुलिन पर खड़े होकर दर्शन देना और मेरे नेत्रों को आनन्दित करना।"

पद (६)

अपनो करि राखो गोपाल।
और कोऊ पै नींत न जावै, दे दृढ़ता नंदलाल।।
रात-दिवस ही हृदय जरावत, विषम विषय की ज्वाल।
जे तुमने अपनायो नाहीं, डस जईहौं भव-ब्याल।।
बनि रहियो मोरे उर अंकुश, रखियो मोर संभाल।
सकल विकार मिटाओ माधव, प्रेमिन के प्रतिपाल।।
धीर-मति अरु अनन्य भाव सौं, तोहि भजूँ गोपाल।
अपने रंग-रंग लेरे मोहे, ओ यशुमति के लाल।।
स्वर्ग और अपवर्ग-सिद्धियाँ, नहिं चाहूँ केहि काल।
भगति-पदारथ मागूँ गोविन्द, देवहू करूण-कृपाल।।
वृन्दावन श्रीधाम मनोहर, रसिकन हेतू रसाल।
नित 'ब्रजदास' भाव ते विचरूँ, वृन्दाविपिन-विशाल।।

हे गोविन्द! मुझे अपना बनाकर रखना ये विषयों की ज्वाला दिवारात्रि हृदय को जलाती रहती है। यदि आपने मुझे अपनाया नहीं तो यह भवरूपी सर्प मुझे डस जायेगा। मैं स्वर्ग व अपवर्ग की सीढ़ियों को भी नहीं चाहता हूँ, केवल आपकी भक्ति मांगता हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं वृन्दावन में भावपूर्वक विचरण करता रहूँ।"

पद (७)

अब मोहि राखि प्रफुल्ल गोपाला।
आठ पहर तोरे चिन्तन में, मगन रहूँ नंदलाला।।
केहि काल पीवत नहीं थाकूं, लूं प्याला पर प्याला।
छक्यौ रहूँ दिन-रैन पीव कर, तोर प्रेम की हाला।।
आ बस रे अब तो मन मोरे, माधुरि-मूरति वाला।
मोहे भी मतवारा कर दे, ओ माधव-मतवाला।।

करूणा करके प्रेमा-भगति, देवहू करूण कृपाला।
ओ करूणा वरूणालय-कान्हा, ओ हरि दीन-दयाला।।
इत उतकी सुन श्रवन थकित भये, मन म्लेच्छ कर डाला।
नाद-ब्रह्म का पान करा रे, अब तो मुरलीवाला।।
शरन पर्‌यौ 'ब्रजदास' चरन की, ओ रसिकन-रखवाला।
होऊ प्रसन्न दास पर अब तो, प्रेमिन के प्रतिपाला।।

हे गोपाल! आप मुझे प्रफुल्लता प्रदान कीजिये। मैं आठों प्रहर आपके चिन्तन में डूबा रहूँ। आपका प्रेम-प्याला पीकर दिवारात्रि मत्त रहूँ। हे करूणाकृपाल! आप मुझे प्रेमभक्ति प्रदान कीजिये। ब्रजदासजी कहते हैं- मैं आपकी शरण पड़ा हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होईये।"

पद (८)

सुन गोविन्द सुनावन मोरी।
तोर दास को दर्शन दीज्यौ, होत आत्मा सोरी।।
दे विवेक विश्वास जगईयौ, विनय करूँ कर जोरी।
सदा लीन आनन्द रहाऊँ, बाँध प्रेम की डोरी।।
अस मराल की सी गति पाऊँ, बुधि निर्मल हो मोरी।
छुटत स्वतः ही असद् पदारथ, उत्तम लेऊँ बटोरी।।
छमऊ नाथ अध अवगुन मोरे, मैं शरणागत तोरी।
छोटे मुख तोरे गुन गाऊँ, तू असीम मति थोरी।।
गुरु करूणा ते अपनी प्रीती, तोर चरन ते जोरी।
नित 'ब्रजदास' चहत सत् संगत, लेहू प्रेम-रस बोरी।।

हे गोविन्द! आप मेरी विनती सुनिये। अपने दास को दर्शन दीजिये। मेरे हृदय में विवेक और विश्वास को जगाइये; यही मैं आपसे विनती करता हूँ। मेरे सभी अवगुण मिटा दीजिये।

श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "मैं सदा संतों की संगत करता रहूँ और प्रेमरस में मत्त रहूँ।"

पद (९)

गोविन्द प्रीत रीत तुम जानी।
हमने तो स्वारथ ही सीख्यो, अऊर सीख नहीं मानी।।
योग-क्षेम करते नहीं थाके, अखिल जगत के दानी।
हम उपकार कबहू नहीं मान्यो, बुद्धि बहुत-सयानी।।
बिनु ही दाम बिके दासन हित, महिमा बेद बखानी।
दुःख में भी करूणा ही कीन्ही, हमने नाहिं पिछानी।।
तत्त्व सभी को इक से दीन्हे, वायु-धरती-पानी।
ऊँच-नीच को भाव न राख्यौ, को दासी को रानी।।
सूली लिखी सूल पर टारी, केहि विध बिरद बखानी।
छद्म-वेष में रक्षा कीन्ही, धनि-धनि चतुर सुजानी।।
को 'ब्रजदास' विधान समझि है, को ने गति पहचानी।
तुम सत्पथ पै लाबै वारे, हम भटके अज्ञानी।।

हे गोविन्द! प्रीति की रीति को तो आप ही जानते हैं। हमने तो केवल स्वार्थ ही सीखा है, कोई सीख मानी ही नहीं है। आप योगक्षेम को पूरा करते हुये नहीं थकते हो। आपने कभी-भी ऊँच-नीच का भाव नहीं रखा है और सर्वदा गुप्त वेष से शरणागतों की रक्षा की है। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "आपकी गति को किसी ने पहचाना नहीं है। आप सत्य के पथ पर ले जाने वाले हैं। हम तो भटके हुए अज्ञानी हैं।"

पद (१०)

गोविन्द शब्द दृव्य के दानी।
शब्द-दान जो करते नाहीं, कहा लिखतो अज्ञानी।।
मोरे शुष्क हृदय में कैसे, फूटत काव्य सुहानी।
तोर प्रेरणा ते ही आवत, सुन्दर भाव सुजानी।।
जो लिखवाओ सोहि लिखिहौं, निमित्त मात्र में जानी।
मैं मति मूढ़ कहा कवि बाजूँ, लीन्हों मरम पिछानी।।
यामें कहा परिश्रम मेरौ, जो इम बन्यो सुजानि।

तोर वस्तु है तोर समर्पित, तोर शब्द, मम बानी।।
तुम ही कवि, कोविद भी तुम ही, तुम ही हो बड़ ज्ञानी।
मैं अति दीन, हीन बुद्धि सौं, यश केहि भांति बखानी।।
का 'ब्रजदास' मूढ़ गुन गावै, का विध कथै कहानी।
तोर प्रताप कवि कहलायौ, तव प्रसाद ते ज्ञानी।।

हे गोविन्द! आप शब्दरूपी दिव्य के दानी हो; यदि आप शब्द दान नहीं करते तो कोई अज्ञानी क्या लिख पाता? मेरे शुष्क हृदय में काव्य के भाव कैसे फूटते? आप जो लिखवाते हैं मैं वही लिखता हूँ, मैं केवल निमित्त मात्र हूँ, इसमें मेरा कोई परिश्रम नहीं है। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "आपकी महिमा को कौन कह सकता है?"

पद (११)

गोविन्द तुम ठाकुर हम दासा।
जम-जनम की प्रीत हमारी, निज चरनन में बासा।।
अखिल विश्व में देव घनेरे, चहुँ दिस करत प्रकासा।
मेरी उनते चाह नहीं है, एक तुम्हीं ते आसा।।
कहा होत या जग के निरखे, रहत सदा मन प्यासा।
तोर दरश बिन मिट नहीं पावै, मोरी नैन-पिपासा।।
तुम ही मात-पिता-सुत-बन्धु, तुम ही मोर सखासा।
तुम बिन और गति नहीं मोरी, तुम बिन घोर निरासा।।
निशिवासर पीवत नाहिं थाकूँ, निशदिन रहूँ छका सा।
और नाम मोहे फीके लागें, तुमरा नाम सुधा सा।।
निज चरनन को प्रेम-पियुषा, दीजो नाथ सदा सा।
घर जायो सो रखियो गोविन्द, विनय करत 'ब्रजदासा'।।

हे गोविन्द! आप हमारे स्वामी हो और हम आपके दास हैं। जन्म-जन्म में मैं आपके श्रीचरणों में हूँ। सम्पूर्ण विश्व में बहुत देव हैं जो अपना प्रकाश कर रहे हैं। किन्तु मेरे तो तुम्हीं एकमात्र आश्रय हो और तुम्हीं मेरे माता-पिता, बन्धु-सखा हो।

तुम्हारे बिना मेरी और कोई अतिरिक्त गति नहीं है। मैं आपके श्रीचरणों का प्रेमामृत पान करना चाहता हूँ। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगोविन्द के चरणों में मेरी यही विनती है।"

पद (१२)

गोविन्द! अपनो बिरद बिचार।
जो लागे मम देखन करनी, हो न सकहिं उद्धार।।
जनम-जनम ते ढ़ोवत डोलूँ, सिर पै बोझ अपार।
तोर कृपा बिन केहि विधि उतरे, लख पापन कौ भार।।
देख लियो अपनो पुरुषारथ, बैठि गयो मन हार।
तव प्रसाद बिन कोऊ न उबर्‌यो, हे जग-तारनहार।।
कोटि-जनम को विकृत है मन, किमि सुधरहिं इहिं बार।
कुटिल-क्रूर-कामी-कलुषत के, हरहीं कौन विकार।।
पर्वत सम ठाड़ी तव करूणा, करूणगिरि-करतार।
ताहि तलहटी में रख लीज्यो, आनन्द रूप मुरार।।
को राखै मो दीन-हीन को, ऐसो कौन उदार।
कित जावै 'ब्रजदास' बापरो, तजि गोविन्द को द्वार।।

हे गोविन्द! आप अपना विरद बिचारो। यदि मैं अपनी करनी को देखूँगा तो मेरा उद्धार होना बहुत कठिन है। तुम्हारी कृपा के बिना ये संभव नहीं है; क्योंकि मेरे सिर पर लाखों पाप का भार है। मैंने अपने पुरुषार्थ को करके देख लिया है। अब मैं मन में हार मानकर बैठ गया हूँ। श्रीब्रजदासजी कहते है- "गोविन्द! अब मैं आपके द्वार को छोड़कर कहाँ जाऊँ?"

पद (१३)

गोविन्द! अनँत अनुग्रह तोरे।
करि करूणा कब के हर लीन्हे, सकल अमंगल मोरे।।
मानुष देह जनम, उत्तम कुल, मति पावन पथ दौरे।
मोरे मन हरिरस की गंगा, छिन-छिन लेत हिलोरे।।
उपालम्भ दे दे सुख पाऊँ, अति आनँद मन मोरे।

अनुपम चोर! अनूठी चोरी, मम अवगुन सब चोरे।।
मैं गुनहीन भयौ यशभागी, ऐब न देखत मोरे।
जे जन अहित करन की ठानी, आज खड़े कर जोरे।।
का 'ब्रजदास' कहूँ करूणा की, कोटि जीव रस बोरे।
पतितन काज शची के आँगन, कृष्ण भये तुम गोरे।।

हे गोविन्द! आपकी मुझे पर अनन्त कृपा है। आपने कृपा करके मेरे समस्त अमंगलों को हर लिया है। मुझे उत्तम-कुल में जन्म दिया है और मनुष्य देह प्रदान किया है, शुद्ध बुद्धि भी दी है। मेरा मन हरिरस की गंगा में हिलोर ले रहा है। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "आपने अपनी करूणा से करोड़ों जीवों को तार दिया है। हे कृष्ण! आप करूणा करके ही शची माता के आंगन में गौर रूप से विचरण कर रहे हैं।"

पद (१४)

प्रभु मोहे चरनन ते लिपटईयो।
मैं भुजंग तुम चन्दन-तरु हो, नेंक न दूर हटइयो।।
मान-गुमान-शान नहीं माँगू, माँगू तो झटकईयो।
प्रेम-सम्पदा मोरे काजै, दोनों हाथ लुटईयो।।
छक्यौ रहूँ दिन रैन नाम-रस, हृदय-विकार घटईयो।
राग द्वेष के कुटिल भाव ते, ऊपर मोहि उठईयो।।
भटकि-भटकि कोटि जुग बीते, अब न मोहि भटकईयो।
जनम-जनम की अटकी नैया, अबके मत अटकईयो।।
प्रबल मोह के कठिन पाश ते, कातर जीव छुटईयो।
एरे चक्र सुदर्शन वारे, बनन तुरन्त कटईयो।।
करूणा करके 'बिरजदास' के, सकल प्रपञ्च मिटईयो।
छिटक देत जग तो दुःख नाहीं, तुम न मोहि छिटकईयो।।

हे प्रभो! मुझे आप अपने श्रीचरणकमलों में ही आश्रय प्रदान करना। आप चन्दन के वृक्ष हो, आप से ही मुझे शीतलता प्राप्त होगी। मुझे राग-द्वेष के कुटिल भाव से ऊपर

उठाना। मैंने भटक-भटक कर करोड़ों जन्म व्यतीत कर दिये हैं; किन्तु अब मुझे नहीं भटकाना। मेरी जन्म-जन्म से अटकी नैया को पार लगा देना। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "मेरे सम्पूर्ण प्रपञ्चों को मिटा दीजिये और मुझे अपने श्रीचरणों से दूर मत हटाना।"

पद (१५)

प्रभुजी अब न सरै बिसराये।
मोर स्वभाव सुधारो स्वामी, मन निर्मल हो जाये।।
भोगत असद्-पदारथ जग में, मन मलीन इतराये।
कहा पथ्य, कुपथ्य कहा है, भेद समझ नहीं पाये।।
मोहि छलत भावुकता मोरी, नाना भांति नचाये।
मैं स्वभाववश स्वयं दुःखी हूँ, कवन विधि सुख आये।।
बैरन बन गई मोर सरलता, हर कोई लाभ उठाये।
कुटिलन बीच फंस्यौ इक भावुक, हरि बिन कौन बचाये।।
तोर रजा में राजी रहनो, जा दिन ते आ जाये।
ता दिन अपनो भाग सराहूँ, उर आनन्द समाये।।
अपने हित अनहित की स्वामी, बात समझ नहीं आये।
'बिरजदास' है शरण तिहारी, नाथ करो मन-भाये।।

हे प्रभो! आप मेरे स्वभाव को सुधार दीजिये। जिससे के मेरा मन निर्मल हो जाये। "क्या सत्य है-क्या असत्य है?"- यह मेरे समझ में नहीं आता है। मैं स्वभाव वश बहुत दुःखी हूँ। फिर मुझे किस प्रकार से सुख मिल सकता है? मैं कुटिलों के बीच में फंस गया हूँ, आपके बिना मुझे कौन बचा सकता है? आपकी राजी में ही मेरी राजी है। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे अपना बना लीजिये।"

पद (१६)

प्रभुजी! सुनियो दीन-पुकार।
तुम हो खानि सकल गुनन के, मैं अवगुन-आगार।।

जनम-जनम सौं ढ़ोवत आयो, कोटि अघन को भार।
ओ करूणानिधि! करूणा करिके, मेरी ओर निहार।।
जीवन-नाव पड़ी मझधारा, कोऊ न खेवनहार।
कातर जीव टेर रह्यो तोहे, करूणा कर करतार।।
ओ पावन परमेश्वर! सुनियो, मोरी करूण पुकार।
मोर हृदय पावन कर दीज्यौ, जिमि गंगा की धार।।
हे गोविन्द! गुणों के सागर, अखिल-विश्व आधार।
मोहि निर्मल कर दे नटनागर, मन को कलुष निवार।।
है 'ब्रजदास' दास दासन को, आन पर्‌यो है द्वार।
ओ अविनाशी अजानबाहू, लीज्यौ मोहि उबार।।

हे प्रभो! मुझ दीन की पुकार सुन लीजिये। आप सकल गुणों की खान हो और मैं अवगुणों की खान हूँ। हे करूणानिधि! करूणा करके मेरी ओर निहारिये। ये कातर जीव आपको पुकार रहा है। हे पावन-परमेश्वर! मेरी करूण पुकार पर ध्यान दीजिये और मेरे हृदय को पावन बना दीजिये। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "मैं आपके द्वार पर पड़ा हूँ, मुझे आप उबार लीजिये।"

पद (१७)

मेरो हित कीजो गोपाल।
निज चरनन में ठौर दीजियो, रखियो मोर संभाल।।
ओ करूणा के सागर स्वामी, करूणायतन-कृपाल।
मोर दीन पै कब रीझोगे, दीनन के प्रतिपाल।।
काम-क्रोध-मद-मोह-ईर्ष्या, माया-कठिन-कराल।
मैं बलहीन कौन बल जीतूँ, अरि-भुज बहुत विशाल।।
विष की बेल बनी मोरी काया, छिन-छिन खावत काल।
मोर विवेक, विकार बिगारत, राखै कौन संभाल।।
कुत्सित-भाव पलत मन आंगन, दिन-दिन होत विशाल।
मैं सद्‌भाव कहाँ ते लाऊँ, बिनु सत-संगत लाल।।

कर जोरे 'ब्रजदास' पुकारत, सुन रे ओ नंदलाल।
भगति-पदारथ देहु रीझि कर, कीजो मोहि निहाल।।

हे प्रभो! आप मेरा हित कीजिये और अपने श्रीचरणों में स्थान दीजिये। मुझ दीन पर आप कब रीझोगे? काम-क्रोध-लोभ-ईर्ष्या ये माया के कठिन जंजाल हैं। मैं बलहीन इनसे कैसे जीत पाऊँगा? विकारों ने मेरे विवेक को बिगाड़ दिया है। फिर मैं सद्भाव कहाँ से लाऊँ। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "निज रक्षा हेतु मैं नन्दलाल को पुकार रहा हूँ।"

पद (१८)

कछु ऐसी कर गोपाल।
कटिलन की कछु चल नहीं पावै, धरी रहै सब चाल।।
सुमिरन में ही रहूँ अहर्निश, चिन्तन रसिक रसाल।
सकल विघन मोरे भजन-पंथ के, टारि देओ तत्काल।।
अन्तःकरण शुद्ध कर दीजो, हर लीजो भव-ज्वाल।
अन्तर-रिपु सतावत निसदिन, बेगि सुनो नँदलाल।।
कहाँ शांत बैठे मनमोहन, मायापति कृपाल।
मोहे ग्रसित कियो चाहत है, जग प्रपञ्च को जाल।।
सरल-सुखद-सुन्दर-सुखकारी, रसिकजनन-रखवाल।
को 'ब्रजदास' बनै गोविन्द बिनु, प्रेमिन को प्रतिपाल।।

हे गोपाल! आप कुछ ऐसा कीजिये; कि कुटिलों की कोई भी चाल चल नहीं पाये; मैं आपका सुमिरन करता रहूँ, मेरे भजन पंथ के सम्पूर्ण विघ्न समाप्त हो जायें और अन्तःकरण शुद्ध हो जाये। हे मनमोहन! आप कहाँ शान्त हुये बैठे हो? सरल-सुखद-सुन्दर-सुखकारी रसिकजनों के रखवाले इस ब्रजदास को दर्शन दीजिये।

पद (१९)

रे मन! लागि हरि के चरना।
जिन चरना सुर मुनि सब लागे, सोई अपने उर धरना।।

जिन चरनन की प्रबल ओटते, काल बली को डर ना।
जिनके बल पाथर, भई नारी, रहियो तिनकी शरना।।
जिनकी साख भरत निगमागम, नेति-नेति कह बरना।
जिन चरनन-प्रभाव ते पृथ्वी, शेष रहे सिर धरना।।
बिनु हरिचरन-कृपा के भव ते, केहि विध हो उद्धरना।
तो 'ब्रजदास' लागि निशिवासर, जो चाहत है तरना।।

हे मन! तू श्रीहरि के श्रीचरणों में लग जा जिन श्रीचरणों का सुर-मुनि सभी चिन्तन करते रहते हैं। जिन श्रीचरणों के प्रभाव से शेषजी पृथ्वी को धारण करते हैं। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "दिवारात्रि इन चरणों की अभिलाषा ही करते रहना चाहिये।"

पद (२०)

हरि तुम निश दिन रहियो नेरे।
हमको तो तुम एक हो स्वामी, तुमको दास घनेरे।।
मैं निरीह-निर्बल-निर्बुद्धी, चरन गहूँ किम तेरे।
अपनी माया आप हटाओ, आन बसो मन मेरे।।
काम क्रोध-मद-मोह-ईर्ष्या, सदा रहत हैं घेरे।
ऐसी कृपा करो जो ये खल, निकसैं मन ते मेरे।।
बीथिन हेर, कुंज सब हेरे, यमुन-पुलिन पर हेरे।
हेर-हेर कर हारा हे हरि, कब दर्शन हों तेरे।।
मोर पतित को कहा माजनो, जो गुन गाऊँ तेरे।
अपनो बिरद बिचारो भगवन, शरणागत रख लेरे।।
'बिरजदास' उपहास सहत है, छिन-छिन जावत टेरे।
मोरे मन को उज्ज्वल करियो, हरियो नाथ अंधेरे।।

हे हरि! आप दिवारात्रि मेरे निकट ही रहना हमारे तो तुम्हीं एकमात्र स्वामी हो और तुम्हारे अनेकों दास हैं। मैं निबल निर्बुद्धि हूँ आप अपनी माया को हटाइये। काम-क्रोध-मद-मोह-ईर्ष्या सदा घेरे ही रहते हैं। अब आप ऐसी कृपा करो

कि मेरे मन से निकल जायें। मैं आपको पुकार-पुकार कर हार गया। आपके कब दर्शन होंगे? श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "आप मेरे मन को उज्ज्वल कीजिये और अन्धकार को मिटा दीजिये।"

पद (२१)

जिनके हरि चरनन की प्रीत।
कहा अहित कर सकत जो हुई हैं, सारे ग्रह विपरीत।।
काम-क्रोध-मद कहा बिगारें, सकहिं न साधक जीत।
मदन-मूंठ का लागे जिनके, मधुसूदन सो मीत।।
श्याम सदा सेवक रूचि राखें, आदिऊ ते यह रीत।
बाल न बांकौ कर पावैगी, कोऊ कुटिल की नींत।।
अति सूधे अति सरल-सुभाऊ, हरि अति कोमल-चीत।
सह न सकत आरत की पीरा, हरि-हृदय नवनीत।।
उमड़े देख दुक्ख के बादर, काहे भयौ भयभीत।
जननि-जठर बाल जो राख्यौ, सोई राखहिं अब मीत।।
जहाँ सत्य तहँ धरम बसत है, युग-युग की यह रीत।
जहाँ धर्म तहँ कृष्ण रहत हैं, जहाँ कृष्ण तहँ जीत।।
प्रेम-पंथ पर चल मोरे प्यारे, गा गोविन्द के गीत।
जो 'ब्रजदास' अभय-पद चाहत, कर रे हरि सौं प्रीत।।

जो श्रीहरि के श्रीचरणों में प्रीति रखते हैं, उसका इस जगत में कौन अहित कर सकता है? चाहे सम्पूर्ण ग्रह विपरीत हो जायें तब भी उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। काम-क्रोध-मद उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। श्यामसुन्दर ने सदा सेवकों की रूचि को ही रखा है। वे अपने भक्त का बाल-बाँका भी नहीं होने देते। भक्त की पीड़ा को वे सहन नहीं कर सकते। जहाँ सत्य है वहाँ धर्म का वास है। यह रीति युग-युग से चली आ रही है।

श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "जिसे अभय पद प्राप्त करना है, उसे श्रीहरि से प्रीति करनी चाहिये।"

पद (२२)

हरि तुम अस करूणा कस कीन्हीं।
ढुरि-ढुरि जात बिनही सेवा के, रूचिर बाँह गह लीन्हीं।।
दान न पुण्य न सुकृत कीन्हे, भजन भगति नहीं कीन्हीं।
खोटी मती बसै उर मोरे, परमारथ-पथ-हीनीं।।
भोगी मन, रोगी तन मेरो, बुद्धि भाव-विहिनीं।
विषयासक्त सदा को हूँ मैं, चरन रति नहीं चीन्हीं।।
विधि-निषेध को ध्यान न राख्यौ, अति उदंडता कीन्हीं।
वेद विरुद्ध आचरण कीन्हो, शरणागति नहीं लीन्हीं।।
नित 'ब्रजदास' विकारन राच्यौ, संत प्रीत नहीं कीन्हीं।
तापै भी तुम अपने रंग में, मोहि रंगी रंगभीनी।।

हे हरि! आपने ऐसी करूणा कैसे की है? आप तो बिना सेवा की ही रीझ जाते हो। दान-पुण्य-व्रत इत्यादि नहीं करने पर भी आप प्रसन्न हो जाते हो। मैं भोगी-रोगी-बुद्धि विहीन-विषयासक्त हूँ कभी-भी आपके श्रीचरणों में रति नहीं की, विधिनिषेध का ध्यान नहीं रखा, सदा वेद-विरुद्ध आचरण किया। श्रीब्रजदासजी कहते हैं- "मैंने कभी सन्तोषपूर्वक प्रीति नहीं की; फिर भी आपने मुझे अपने रंग में रंग लिया।"

पद (२३)

हरि तुम सकल लोक-आधार।
जगन्नाथ! जगनिवास हो तुम, माया-गुन गो पार।।
आगम-निगम-सन्त-सुर भाखत, वेदन के तुम सार।
तुम ते परे तत्त्व कछु नाहीं, परम तत्त्व बलिहार।।
योगिन-ईश, ब्रह्म ज्ञानिन के, प्रेमिन प्राणाधार।
तुम ही निगुन, सगुन भी तुम ही, व्यापक रूप अपार।।
अति कोमल अति कठोर हो तुम, करूणा रूप मुरार।
अति विराट अति सूक्ष्म तत्त्व हो, जग के रचनाकार।।
का पै जाय पुकारूँ स्वामी, तुम सम कौन उदार।

'बिरजदास' की विनती सुनियो, हे पूरण दातार।।

हे हरि! आप सम्पूर्ण लोकों के आधार हो। आगम-निगम संत देवता सब यही कहते हैं कि तुम वेदों का सार हो। तुम से परे कोई तत्त्व नहीं है। तुम्हीं ही सगुण-निर्गुण व्यापक हो। अति विराट् व सुख स्वरूप हो।

ब्रजदासजी कहते हैं- "हे दयालु प्रभो! आप मेरी विनती को सुन लीजिये।"

पद (२४)

रखियो निज चरनन की ओट।
दया लागि हरि दूर कीजियो, मोर हिया को खोट।।
इत कूँआ उत खाई प्रभुजी, परम ही लागे चोट।
मैं निर्बल काके बल जीतूं, विषयन के गढ़-कोट।।
छिन-छिन रीतो होतो जाऊँ, घटत पुण्य की पोट।
मो मन राग द्वेष-घुन लाग्यौ, खात कचोट-कचोट।।
साधन भजन कछु नहीं जानूँ, हे करूणा के कोट।
दीन-मलीन हीन सब ही विधि, मैं बुद्धि कौ भौंट।।
कब लौं नाथ उंचाये डोलूं, निज कर्म को खोट।
हरि बिन कोन उतारै सिर ते, लख पापन की पोट।।
द्वार परयौ 'ब्रजदास' पुकारै, खोल दिया के होट।
अपने हाथ उठाओ अब तो, गयौ चरन में लोट।।

हे हरि आप अपनी चरणों की ओट में मुझे रख लीजिये और दया करके हृदय के दोषों को मिटा दीजिये। विषयों का किला बड़ा भयंकर है मैं निर्बल किस प्रकार से उसे जीत पाऊँगा? मेरे पुण्य की पोटली घटती ही जा रही है और मन राग-द्वेष में लग गया है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "अब अपना हाथ बढ़ाकर मेरे मस्तक पर रख दो; क्योंकि अब मैं आपके चरणों में न्यौछावर हो गया हूँ।"

पद (२५)

कोटिन-कोटि अनुग्रह तोरे।
अपने चित् कबहू नहीं लाये, हे गुपाल तुम अवगुन मोरे।।
कहा चुकावै जीव बापुरो, ऋण करूणानिधि तोरे।
सुर-दुर्लभ नर-देह दई तुम, पै सत्संग में बोरे।।
शिव-सनकादिक शुक-शेषादिक, जितन कहैं सौ थोरे।
कौन सरल है तोर कृपा बिनु, खावत हैं झखझोरे।।
सहस मुखन ते कोटि कल्प तक, कह न सकहिं गुन तोरे।
काटि कठिन माया के बन्धन, तुम ते केहि विधि जोरे।।
कछुन काम के रहे जगत में, कौन रहन दे सोरे।
को 'ब्रजदास' राखहिं हरि बिनु, हमसे दास निगोरे।।

हे हरि! आपने मुझ पर कोटि-कोटि अनुग्रह किये हैं। मैंने अपने चित्त में आपको कभी नहीं बसाया है। यह जीव आपके ऋण को कैसे चुका सकता है? आपने तो देवताओं को भी दुर्लभ कृपा मुझे प्रदान कर दी है और संत-संग दिया है। शिव-सनकादिक आपकी जितनी भी महिमा गाये हैं वह भी कम ही है। ब्रजदासजी कहते हैं- "अब, हम जगत के किसी भी काम के नहीं रहे; आप ही हमें अपनाइये।"

पद (२६)

सब करि एक ही फल मैं चाहूँ।
सारे पुरुषारथ के बदले, गोविन्द-भगति पाऊँ।।
सन्त-महन्त-यति योगीजन, जा काऊ पै जाऊँ।
दृढ़ अनुराग रहै हरि-चरनन, एक ही सौं वर पाऊँ।।
तीरथ-बरत जोग-जप-साधन, सुमिरन-भजन कराऊँ।
सकल साधनाको एक हि फल, प्रेमा-भगती पाऊँ।।
सदा रहूँ फैलाये झोली, नैंक न संशय लाऊँ।
भगति-पदारथ छाँड़ि काऊ ते, और कछु नहीं चाहूँ।।
सन्त-असन्त रु खल-सज्जन में, नैंक भेद नहीं लाऊँ।

सब में अपनौ इष्ट ही देखूँ, ऐसी दृष्टि पाऊँ।।
अस 'ब्रजदास' भाव होक मेरो, अस अनन्य-मति पाऊँ।
सकल समष्टि में ही अपने, हरि को रूप लखाऊँ।।

हे प्रभो! मैं सबका एक ही फल पाना चाहता हूँ- आपके श्रीचरणों की निर्मल भक्ति। संत-महंत, यति-योगी सबके पास जाकर एक ही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ- प्रेमभक्ति। तीर्थ, व्रत, योग इत्यादि साधन का फल प्रेमभक्ति ही चाहता हूँ। संत-असंत में भेद न करके सब में आपके ही दर्शन करता रहूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "सम्पूर्ण सृष्टि में अपने प्राणप्रिय श्रीहरि को ही देखता रहूँ।"

पद (२७)

सुनहू श्याम इक विनती मोरी।
और कोऊ पै जा नहीं पाऊँ, बाँधि राखियो निज कर डोरी।।
को कृपाल करूणामय तुम सौ, तुम तजि कौ पै जाऊँ भोरी।
का की ओर तकूँ व्याकुल है, तुम चन्दा मैं दीन चकोरी।।
तुम ही मेरे जीवन धन हो, तुम से ही बस आसा मोरी।
अव्यभिचारिणी भक्ति दीज्यौ, कतहूँ न जा फैलाऊँ झोरी।।
कवन विधि तुमरो यश गाऊँ, तुम अगाध मेरी मति थोरी।
मैं तो बस इतनो ही जान्यौ, मेरी सर्वस प्रीती तोरी।।
नित 'ब्रजदास' निरखि सुख पाऊ, रखियौ सदा प्रेमरस बोरी।
मोर हृदय पर आनि बिराजो, नवनागर संग नवल किशोरी।।

हे श्यामसुन्दर! आप मेरी विनती सुन लीजिये। मैं अब और किसी के निकट नहीं जा पाऊँ कृपा करके आप मुझे अपनी कृपा डोर से बाँध लीजिये। अब मैं किसको देखूँ? तुम चन्द्र हो और मैं चकोर, तुम मेरे जीवन धन हो। मुझे निष्काम दृढ़भक्ति प्रदान कीजिये ये दास झोली फैला करके प्रार्थना कर रहा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैंने सबसे प्रीति तोड़ दी है, आप मुझे प्रेमरस में निमग्न करके रखना।"

पद (२८)

मन की सुन माधव मधुवन के।
प्रेमिन-मीत, दीन के बन्धु, नाथ अनाथन के।।
तुम तजि और कौन ढिंग जाऊँ, उद्धारक पतितन के।
निर्बल के बल तुम ही माधव, तुम ही धन निर्धन के।।
साँझ-भोर मेरी प्रेममयी हो, छिन दीजौ चिन्तन के।
भजनमयी मोहि रैन दीजियो, दिन दीजो सुमिरन के।।
भुजा उठाई कहत हूँ तुम सौं, साखी साँच वचन के।
कृपासाध्य है मारग मेरौ, गुन नाहीं साधन के।।
'बिरजदास' कछु और न चाहत, भाव लखो मो मन के।
हे करूणामय! अवसर दीजो, श्रीहरिनाम जपन के।।

हे मन! माधव को ही सुन। ये प्रेमियों के मित्र है और अनाथों के नाथ हैं। मैं आपको तजकर कहाँ जाऊँ? आप निर्बलों के बल और निर्धनों के धन हो। प्रातः संध्या आपका ही चिन्तन करता रहूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं अब और कुछ नहीं चाहता; ऐसी कृपा कीजिये निरन्तर आपका पतित पावन नाम जपता रहूँ।"

पद (२९)

प्यारे! उरझे को सुरझा रे।
मम क्रन्दन सुन रे नंद नन्दन, करूणा रूप मुरारे।।
मोर ब्यथा कोऊ नहीं जानत, अँसुवन बहत पनारे।
तोर दास उपहास सहत है, हंसी करत जग वारे।।
का पच्छिम में उगहीं भानू, का धरती पै तारे।
कहा तुम्हार दास जायेंगे, और कोऊ के द्वारे।।
जग अपमान करन में लाग्यौ, बिनही मरम विचारे।
अपनो मान छाँड़ि मनमोहन, दासन मान रखा रे।।
आये ही अब काज सरैगो, रसिकन लाज बचारे।
हाथ जोरि 'ब्रजदास' बुलावत, आ रे गोविन्द आ रे।।

हे मनमोहन! आप उलझे हुए को सुलझा दो। मेरा क्रन्दन सुन लीजिये। करूणानिधान! मेरी विद्या को कोई नहीं जानता है। तुम्हारा दास कहाकर भी जगत में उपहास सुनता हूँ। जगत अपमान करने में ही लगा रहता है। मैंने अपना मान छोड़कर आपका दास होने में गौरव मान लिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं हाथ जोड़कर आपको पुकार रहा हूँ आप आ जाइये।"

पद (३०)

किशोरी मोसे कहा अपराध भयो।
जो मोरे कूँ बास स्वामिनी, ब्रज में नाहिं दियो।।
कौन सी चूक भई है ऐसी, कौन सो पाप भयो।
ओ करूणा की रूप किशोरी, काहे छाँड़ि दियो।।
सुनि-सुनि बतियां धाम-धरा की, निशदिन जरत जियौ।
बिनु दर्शन के पीरी हो गयी, उपज्यौ रोग नयौ।।
कासौं कहूँ कौन दुःख जानै, मानैं कौन कह्यौ।
व्याकुल करत विरह-वृन्दावन, कबहुन सुक्ख लह्यौ।।
हा! 'ब्रजदास' आस सब छूटी, मन को चैन गयो।
धाम-विरह ने धीर हर लियो, छिन नहीं जात सह्यो।।

हे किशोरी राधा! मुझ पर क्या अपराध हो गया है जो आपने ब्रज का वास नहीं दिया है। किस कारण से आपने मुझे छोड़ दिया है? धाम महिमा को सुनकर हृदय अत्यन्त व्याकुल रहता है। दर्शन के बिना में निस्तेज हो गया हूँ, मैं अपने दुःख को किससे कहूँ, कौन मानेगा? ब्रजदासजी कहते हैं- "अब, मेरी आशा छूट गई है। धाम के विरह ने मेरे धैर्य को हर लिया है एकक्षण भी सहन नहीं होता है।"

पद (३१)

पाये प्रीतम प्राण पियारे।
अनुपम अमित अनोखे अद्भुत, आनँदघन उजियारे।।
निरखि रहूँ नागर नैनन सुख, नित्य-नवीन-नियारे।

रसिक रसाल रास के रसिया, रसिकन के रखवारे।।
कुँज-करील-कूल-कालिन्दी, द्रुम-कदम्ब अति प्यारे।
प्रीतम प्राण-प्रिया संग राजत, प्रेमिन-प्राण-अघारे।।
विचरण करत सदा ब्रज-बीथिन, ब्रज रस चाखन हारे।
ब्रज-बनितन के बैन सुनत हैं, दो दो बापन वारे।।
नव नागर संग नवल नागरी, निशिदिन रहत निहारे।
या सुख हेतु बिरज में डोलत, ये 'ब्रजदास' बिचारे।।

हमने तो प्राण पियारे प्रीतम को उपाय माना है। नित्य नवीन, रसिक रसाल, रास रसिया, रसिकन के रखवारे, प्राण ाप्रिया वल्लभ, श्रीकृष्ण राधा के संग सदा विराजते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "नवल नागरी नागर के दर्शन करने के लिये मैं ब्रज की कुंज में विचरण करता हूँ।"

पद (३२)

जे नर हरि सौं प्रीत लगाई।
ते नर-नाहर कबहू न राखत, सपने हू आस पराई।।
माया-मोह मत्सर की आंधी, विचलित नहीं कर पाई।
अडिग रहे सत-पथ के माहीं, कबहू न पीठ दिखाई।।
काम ही मारि क्रोध पछारयौ, ममता मार गिराई।
चढ़ि बैठे मन की छाती पर, चल न सकी चतुराई।।
अंतर-रिपु सब जीति लिये हैं, रण-कौशल दिखलाई।
सीस उतारि धर्‌यौ गुरु चरना, बीरन की गति पाई।।
सत-मारग के सबल सूरमा, विजयी भये जित जाई।
नाम के बल जीत्यौ जग सारो, मात कबहु नहीं खाई।।
एक आस विश्वास कान्ह ते, प्रबल भरोसो माई।
नित 'ब्रजदास' शरण गोविन्द की, चरण तजे कित जाई।।

जिस मनुष्य ने श्रीहरि से प्रीति लगाई है वह मनुष्य स्वप्न में भी किसी दूसरे से आशा नहीं करता है। माया-मोह-मत्सर की आँधियाँ भी विचलित नहीं कर पाती। सदा सत्य के पथ पर

अड़िग रहता है। काम-क्रोध-ममता को मार गिरता है। अपने शीश को श्रीगुरु चरणों में न्यौछावर कर देता है। सत्-मार्ग का योद्धा सर्वदा विजयी रहता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "नाम के बल से वह सम्पूर्ण जगत को जीत लेता है। मैंने श्रीगोविन्द की शरण ले ली है। अब, इनको छोड़कर कहीं नहीं जाना है।"

पद (३३)

हरि के रीझन की गति न्यारी।
सबल जनन को डूबत देखे, निर्बल लिये उबारी।।
योग-याग करी ऋषिगन हारे, हारे ज्ञानी भारी।
को साधन गोपिन में देख्यौ, रीझे कृष्ण मुरारी।।
ज्ञानी तज, ध्यानीजन त्यागे, त्यागे तपसी भारी।
ग्वाल-बाल निज अंग लगाये, प्रेम तत्त्व बलिहारी।।
छप्पन भोग छत्तीसों व्यंजन, धरे रहे भरि थारी।
नैंक छाछ पर रीझि गये री, गुननिधि गिरधारी।।
कहा कहूँ 'ब्रजदास' बावरे, कस रीझे बनवारी।
बिनु साधन ही मोर दीन पर, ढुरि-ढुरि जात मुरारी।।

हरि के रीझने की गति न्यारी है। सबल जनों को डुबते हुए देखा है और निर्बल जन को उन्होंने उबार लिया है। योगी-याज्ञिक, ज्ञानी हार गये हैं और देखिये गोपियों ने कौनसा साधन किया जो इन पर श्रीकृष्ण मुरारी रीझ गये हैं? ग्वाल-बालों को इन्होंने अपने हृदय से लगाया है। छप्पन भोग, छत्तीस व्यंजन थाल में रखे रह जाते हैं; किन्तु गिरिधारी गोपियों की छाछ पर रीझ जाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "मुझ साधन हीन पर भी वे प्रसन्न हो गये हैं।"

पद (३४)

हरि तुम सब ही भांति हमारे।
मात-पिता-बन्धु-सुत-स्वामी, तुमसौं नाते सारे।।
कब हून दूर रहैं चरनन सौं, लगे रहैं नित लारे।

तुम नदिया हम नीर प्रभुजी, तुम चन्दा हम तारे।।
तुम रस सागर तो हम बूँदें, हम प्रेमी तुम प्यारे।
हे अंशी! यह जानि राखियौ, हम हैं अंश तिहारे।।
जो हम दीन, दीनबन्धु तुम, करूणा रूप मुरारे।
हम दीपक तुम ज्योति हमारी, आनँद के उजियारे।।
विनय करत 'ब्रजदास' बावरो, सुनियो नन्द दुलारे।
नाथ! अनाथन और देखियो, रसिकन के रखवारे।।

हे हरि! तुम सभी प्रकार से हमारे हो। माता-पिता, भाई-बन्धु सभी नाते तुमसे ही हैं। मुझे अपने श्रीचरणों से कभी दूर मत करना। आप चन्द्र हम तारे, आप अंशी हम अंश हैं, आप ज्योति हम दीपक हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे नन्द के दुलारे! मुझ अनाथ पर कृपादृष्टि रखना।"

पद (३५)

हरि संग उरझि गये री नैना।
दरश करत मोहि दिन देखत है, निरखत निरखै रैना।।
लटपट होय गिरूँ भूमि पर, कहा करूँ री भैना।
काहू बुरो मानियो मत री, अटपट निकसैं बैना।।
एक छवि में भई बावरी, छीन लियो री चैना।
तन को होय तो बैद बुलाऊँ, मन को रोग मिटै ना।।
कहा करूँ मेरो बस नाहीं, जो जग देत उलैहना।
मैं असहाय भई री अब तो, मोपै सुरझि सकै ना।।
'बिरजदास' ऐसी भई अब तो, निरखन नैंक रुकै ना।
बिन देखे वा मुख की शोभा, मोरे प्राण रहै ना।।

मेरे नेत्र श्रीहरि के संग में उलझ गये हैं, उनके दर्शन कर मैं भूमि पर लुण्ठित हो जाती हूँ। एकबार ही छवि को दर्शन कर बावड़ी हो गई हूँ। अगर तन का रोग होता तो वैद्य को बुलाती किन्तु मन का रोग तो मिटाये नहीं मिट रहा है। हे सखि! अब मेरा कोई वश नहीं है और ऊपर से जगत

उलाहना दे रहा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "अब तो नेत्र देखे बिना नहीं रहना चाहते।"

पद (३६)

सुने री मैंने हरि करूणा की खान।
बिन हि बात द्रव जात दीन पर, जन अपनो सो जान।।
गुन ही गुन देखत गुनग्राही, सुन्दर शील सुजान।
अवगुन चित् न देत निज जन के, आदिऊ ते यह बान।।
नाना भेष धरत प्रेमिन हित, प्रणतपाल भगवान।
दासन मान रखावन काजै, तजत आपनो मान।।
अंग-संग ही रहत सांवरो, छिन-छिन होवत भान।
कौन कहत गोविन्द नहीं राखत, मोर पतित को ध्यान।।
मैं सेवक हरि स्वामी मेरे, सदा चरण को ध्यान।
को 'ब्रजदास' सहै मद उनको, जिनके अस अभिमान।।

मैंने तो हरि को करूणा की खान सुना है। वे तो ऐसे ही द्रवित हो जाते हैं। अपना जानकर वे सेवक में गुण ही गुण देखते हैं। ऐसे सुन्दर शील और सुजन हैं कि दास में अवगुण देखते ही नहीं हैं। कौन कहता है कि गोविन्द लाज नहीं रखते। उन्होंने मुझ जैसे पतित का भी ध्यान रखा है। मैं सेवक हूँ वे मेरे स्वामी हैं, सदा सर्वदा उनके श्रीचरणों का ध्यान रखता हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "हरि के दास होने का गौरव सदा होना चाहिये।"

पद (३७)

गोविन्द भक्तन पाछे डोलै।
यह मत स्वयं भागवत भाखत, उच्च घोष ते बोलै।।
ऐसो दिव्य भाव गोविन्द को, कौन तराजू तोले।
भक्त चरण सकी रज के काजे, लारै-लारै-डोलै।।
संग लेत अपने प्रेमिन को, झूलत प्रेम-हिंडोलै।
जो नहीं जानत पंथा प्रेम कौ, कैसन भेद यह खोलै।।

आप ही एक अनेक भयौ है, भक्त हृदय रस घोले।
इहिं विधि ते अपने ही रस कौ, चाख्त होंले-होलै।।
कों 'ब्रजदास' गूढ़ गति समझै, कौन तत्त्व यह बोलै।
क्रीतदास भक्तन को बन के संग संग नित डोलै।।

गोविन्द तो अपने भक्तों के पीछे-पीछे डोलते रहते हैं। यह मत स्वयं श्रीमद् भागवत पुराण में उच्च स्वर में कहा है। गोविन्द का ऐसा दिव्य भाव है कि वे अपने प्रेमी को प्रेम हिण्डोला में झुलाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "उनके गूढ़ तत्त्व की गति कौन समझ सकता है, वे तो भक्तों के साथ वन-वन में घूमते रहते हैं।"

पद (३८)

गोविन्द प्रेमिन के हित आये।
लीन्हों जन्म, अजन्मा ब्रज में, नाना रूप धराये।।
प्रेम के काज बने हरि जोगी, गोपिन पाछे धाये।
लोक-लाज की कानि न राखि, माखन चोर कहाये।।
जाकी पद-पावन-रज काजै, सकल देव ब्रज आये।
सोहि राधा की चरण-रेणुका, अपने-अंग रमाये।।
गोपन काज तजी प्रभुताई, बिचरे लकुट उठाये।
ग्वाले बनके बन-बन डोले, गऊवन-वत्स चराये।।
कबहुन खोई पत प्रेमिन की, चाहे निज पत जाये।
भक्तन मान बढ़ावन काजे, अपनो मान घटाये।।
शिव-सनकादिक अरु ब्रह्मादिक, जाको पार न पाये।
सोही ब्रह्म प्रेम के कारन, ब्रज बीथिन बौराये।।
नेति-नेति जाहि वेद पुकारे, आदि अनन्त बताये।
सोही ब्रह्म बिरज में देखो, गोपिन नाज उठाये।।
हा! 'ब्रजदास' अनोखो-अचरज, जो जगपति कहलाये।
सो ही प्रेमपाश में बंध के, ब्रज में गारी खाये।।

गोविन्द प्रेमियों के हित के लिये ही आये हैं। उन

अजन्मा ने ब्रज में जन्म लिया है। प्रेम के कारण ही हरि योगी बनकर गोपियों के पीछे-पीछे भ्रमण करते रहते हैं। लोकलाज न रखकर माखन चोर कहलाते हैं। जिनकी पदरज देवताओं को शक्तियुक्त बना देती है। श्रीकृष्ण श्रीराधा की चरणरेणु को अपने श्रीअंग में धारण करते हैं। गोपियों के लिये ठाकुरजी ने अपने प्रभुताई को छोड़कर लकुट धारण करके रहते हैं। ग्वाला बनकर गायों के पीछे-पीछे घूमते हैं। शिव-ब्रह्मा भी उनका पार नहीं पाते हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "ऐसे अनोखे ठाकुरजी प्रेमपाश में बँधकर ब्रज की गोपियों से उलाहना सुनते हैं।"

पद (३६)

सखी री मेरे गोविन्द गुन की खान।
सहज सुकोमल सकल गुनन निधि, सुन्दर सरल सुजान।।
सुन्दर श्याम सदा ही राखी, निज दासन की आन।
सहज कारूणिक हृदय कान्ह को, छिन-छिन राखत ध्यान।।
जीव मात्र पै दया करत है, भयहारी भगवान।
असुरन को निज धाम देत हैं, कौन गोविन्द समान।।
खींच लेत योगिन को मन भी, बरबस छूटत ध्यान।
सकल समष्टि बस कर लीन्ही, हरि-मुरलि की तान।।
कहा करै कलिकाल हमारौ, करैं नाम-रस पान।
नित 'ब्रजदास' भरोसे गोविन्द, सोवैं चादर तान।।

हे सखि! मेरे गोविन्द तो गुणों की खान हैं। वे सहज सुकुमार हैं। उन्होंने अपने दासों की लाज सदा ही रखी है। जीवमात्र पर दया करते हैं, असुरों को निज धाम में भेज देते हैं। बताइये गोविन्द के समान उदार कौन हो सकता है? सम्पूर्ण सृष्टि को अपने गुणों से वश में कर लेते हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "यह कलिकाल हमारा क्या बिगाड़ेगा? हम तो श्रीहरिनाम का रस पान कर रहे हैं।"

पद (४०)

औगुन देखत नाहीं श्याम।
गुन ही गुन पर दृष्टि डारत, गुननिधि-गुन धाम।।
कछु न चहत कबहूँ कोई सौं, सब विधि पूरण काम।
बिनु हेतू ही द्रवत जीव पर, कैसो करूणा धाम।।
सुमिरत ही दौरत आतुर है, अस उदार चित् श्याम।
छिन में करत काज दीनन के, स्वयं अनीह-अकाम।।
अस करूणा कोपै उपजैगी, कौन करै अस काम।
रिपुदल पै रीझ्यो करूणामय, देत आपनो धाम।।
रखि 'ब्रजदास' भरोसो भारी, तुरत सरैगो काम।
जिनके कछु अवलम्बन नाहीं, तिनको है बलराम।।

श्यामसुन्दर हमारे अवगुणों को नहीं केवल गुणों को ही देखते हैं। किसी से वे कुछ भी नहीं चाहते और बिना कारण जीव पर द्रवित हो जाते हैं ऐसे करूणा के धाम हैं। दीनों के कार्य क्षण में कर देते हैं। ऐसी करूणा और कौन कर सकता है? ब्रजदासजी कहते हैं- "हमें तो उनका ही भारी भरोसा है, जिनका कोई बल नहीं है उनके बल श्यामसुन्दर हैं।"

पद (४१)

गहत गुन गुनग्राही गोपाल।
अवगुन मोरे देखत नाहीं, ऐसो करूण-करूणा कृपाल।।
गुन ही गहत सदा मनमोहन, राखत हियौ विशाल।
कबहूँ न दोष लखे दासन के, ऐसो दीन-दयाल।।
प्रेमिन के पाछे ही डोलत, नाँचत दै-दै ताल।
रसिकन को रखवारो प्यारो, प्रेमिन को प्रतिपाल।।
अन्तर-रिपु कछु कर न सकत है, डसत न माया-ब्याल।
अंग-संग ही रहत सांवरो, पल-पल करत संभाल।।
भाव-कुभाव भजै कोई भी, हरि रीझत तत्काल।
अरिजन को निज धाम देत है, ऐसो कौन कृपाल।।

सकल दोष भूले भक्तन के, भव-भंजन नंदलाल।
लखि 'ब्रजदास' कृपा गोविन्द की, छिन-छिन होत निहाल।।

गोपालजी गुणग्राही हैं। वे अपने दासों के दोषों को कभी नहीं देखते हैं। रसिकों की सदा रक्षा करते हैं ऐसे प्रेमियों के प्रतिपाल हैं। कोई भी भाव-कुभाव से भजता है उसी पर रीझ जाते हैं। असुरों को भी अपना धाम प्रदान कर देते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "नन्दलाल अपने भक्त के समस्त दोषों को भूल जाते हैं।"

पद (४२)

सुने री हम अति कोमल गोपाल।
कवन विधि ते असुर संघारे, केहि विधि कंस-कराल।।
लचक जात मुरली के बोझन, कर-सरोज तत्काल।
केहि विधि ते अंगरिन पै अपनी, गिरिवर लियो संभाल।।
जिन हाथन सौं गऊवैं दूहत, थकित भये नंदलाल।
उन हाथन सौं केहि विधि आली, नाथ्यौ नाग-कराल।।
चरनकमल की लखि कोमलता, सुरनर होत निहाल।
केहि विधि ते या कठिन भूमि पै, नृत्य कियो नंदलाल।।
जो बयार ते ही हों मैले, सुन्दर मोहन लाल।
कौन कला ते बन-बन बिचरे, बन गऊवन के ग्वाल।।
यह 'ब्रजदास' अभागौ जानै, कित जनम्यौ तेहि काल।
उन चरनन के नीचे अपनौ, कर न धर्‌यौ बन ग्वाल।।

मैंने सुना है गोपालजी अत्यन्त कोमल हैं। उन्होंने असुरों का संहार किया है। जो श्यामसुन्दर त्रिभंग ललित होकर मुरली वादन करते हैं वे कनिष्ठा उंगली पर श्रीगिरिराज को धारण करते हैं। गौचारण में भी श्यामसुन्दर थक जाते हैं- ऐसे कोमल हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "हम बड़े अभागे हैं जो श्यामसुन्दर की प्रकट लीला के समय हमारा जनम नहीं हुआ।"

पद (४३)

सुने री मैंने भगत-बछल गोपाल।
निज व्रत टरे, दास व्रत नाहीं, ऐसो करूण कृपाल।।
टार देत अपनी परतिज्ञा, भगत काज नंदलाल।
सदा टेक राखत रसिकन की, रसिक-मान-रखवाल।।
नैक ढ़ील नहीं देत सांवरौ, पल-पल करत संभाल।
प्रीत-रीत जानत यदुनन्दन, प्रेमिन को प्रतिपाल।।
सन्त जनन के पाछै डोलत, करूणामय गोपाल।
जो भक्तन सौं करत कुटिलता, उन दुष्टन कौ काल।।
अपनी टेक कबहूँ नहीं राखत, भगत टेक तत्काल।
सुनि 'ब्रजदास' नेम गोविन्द को, छिन-छिन होत निहाल।।

सखी री मैंने सुना है- श्यामसुन्दर भक्तवत्सल हैं अपने भक्त का व्रत वे टलने नहीं देते। ऐसे भक्त वात्सल्यसिन्धु हैं। वे सदा भक्त की टेक को ही रखते हैं। प्रीति की रीति तो श्यामसुन्दर ही पहचानते हैं और सदा सर्वदा भक्तजनों के पीछे-पीछे डोलते हैं। जो भक्तों से कुटिलता करता है, उनके लिये वे काल बन जाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "गोविन्द का नाम अति सुन्दर है, वे तत्क्षण निहाल हो जाते हैं।"

पद (४४)

जे जन प्रेम के फन्द पर।
तिनके नैन कबहू नहीं सूखे, निशदिन रहत झरे।।
प्रेम के फन्द परे गोपीजन, सुधि भूले सिगरे।
हा गोविन्द! हा माधव! प्यारे, बन-बन कहत फिरे।।
प्रेम के फन्द परे जो कोई, कबहू ना धीर धरे।
सदा रहत पावस ऋतु सजनी, नैनन-नीर-ढरे।।
प्रेम के फन्द परे जो प्रेमी, मन की कहत डरे।
घायल की गति घायल जानै, कोऊ ना पीर हरे।।
प्रेम के फन्द अनोखे सजनी, कोऊ नहीं उबरे।

मीरा-तुलसी सूर-कबीरा, याही में जाय परे।।
परि रहियौ 'ब्रजदास' बावरे, प्रेम-बिरच्छ तरे।
या फन्दे की गाँठ पियारी, लखि यमराज डरे।।

जो प्रेम के फन्द में पड़ गये हैं, उनके नेत्रों से अश्रु-धारा कभी नहीं सूखती है। अपितु दिवारात्रि उनके नेत्र भीगे रहते हैं। गोपियाँ प्रेम के फन्द में पड़ गई और अपने देह की सुध-बुध भूल गईं। एक घायल की पीड़ा को दूसरा घायल की समझ सकता है। मीराबाईजी, तुलसीदासजी, कबीरदासजी, सूरदासजी इसी प्रेमफन्द में पड़े थे। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे मन! तू श्यामसुन्दर के प्रेमफन्द में पड़ जा।"

पद (४५)

प्रेम समन्द भरयौ अति भारी।
निज-निज पात्र सबही भर लावत, कर्मन के अनुसारी।।
प्रेम तत्त्व ते कोऊ न रीतो, ठग-ठाकुर-व्यभिचारी।
हरि-करूणा सब पर ही बरसत, कौन पुरुष को नारी।।
बाको नीर घटयौ नहीं कबहू, पीयत और बढ़ा री।
निज-निज भाव भरे घट सबने, करूणा-सिन्धु मंझारी।।
दादू-तुलसी-सूर-कबीरा, मीरा मगन-मुरारी।
वाही में ते लाय-लाय सब, बाँट रहे बलिहारी।।
तन-मन-धन जीवन सब करदै, गुरु चरणन पै वारी।
भर 'ब्रजदास' अपनो घट भी, गा रे गुन गिरधारी।।

प्रेम का सम्बन्ध सबसे भारी होता है। अपने-अपने पात्र और अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही जीव प्रेम को प्राप्त करते हैं। दादूजी, तुलसीदास, मीराबाईजी, सूरदासजी प्रेम में ही मग्न रहे और उन्होंने अन्य जीवों को भी प्रेमरस बाँटा। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं अपने श्रीगुरु के चरणों के बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने भवमुक्ति का उपाय गोविन्द गुणगान बताया है।"

पद (४६)

प्रेम कौ अद्‌भुत भयौ निदान।
विधि-निषेध ते परे हो गये, छूटे विधि-विधान।।
सम्पति-सन्तति-शक्ति-उपाधी, उत्तम कुल की कान।
वर्णाश्रम-आचार-रूप-मद, इनको नहिं कछु ध्यान।।
लौकिक-वैदिक कर्म के बन्धन, स्वतः कटे ही जान।
रहत अकिंचन होय जगत में, सहज मिटे अभिमान।।
छिन हाँसत छिन रोवत आली, छिन में छेड़त तान।
देह-गेह की सुधि न रहत है, प्रेमिन-दशा अजान।।
ज्यों छुपाव त्यों होत उजागर, दिन-दिन दूनौ मान।
जा घट प्रेम प्रगट भयो सजनी, ता घट आप पिछान।।
अब 'ब्रजदास' कहा लौ राखूं, निगमागम को ध्यान।
कहा प्रेम में नेम सखी री, छूटे सकल विधान।।

यह प्रेम विधि निषेध से ऊपर है। सम्पत्ति, शक्ति, उपाधि, उत्तम-कुल, वर्ण, आश्रम, मत इनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता है। प्रेम में मत्त व्यक्ति कभी हंसता है तो कभी रोता है, कभी मन्द-मन्द स्वर में गाने लग जाता है। उसे अपने देह की सुध नहीं रहती। प्रेमियों की दशा बड़ी विलक्षण होती है। ज्यों-ज्यों प्रेम को छुपाना चाहता है त्यों-त्यों उजागर हो जाती है। ब्रजदासजी कहते हैं- "निगम-आगम को कहाँ तक ध्यान रखूँ? इस प्रेम ने ही सम्पूर्ण जगत को छुड़वा दिया है।"

पद (४७)

प्रेम को मत कीजौ ब्यौपार।
स्वारथ ते जग ही नहीं रीझे, कस रीझहिं करतार।।
बहुजन-हिताय भाव ऊँचो है, स्वारथ महा-विकार।
कला दयी सेवा के काजे, बेचन में नहीं सार।।
निस्वारथ सेवा ते प्रगटत, हृदय प्रेम को ज्वार।
स्त्रोत प्रेम को सेा ही है, सब साधन बेकार।।

प्रेम ही राम-रहीम प्रेम ही, प्रेम ही सबको सार।
प्रेम तत्त्व को क्या समझा रे, ओ मतिमन्द गँवार।।
सब में राम, राम में सब है, ऐसी मति उर धार।
निश्छल प्रेम सभी ते कर रे, बेडा होवे पार।।
या ढ़ाई आखर के पौरूष, सहत शेष महि-भार।
प्रेम के बल 'ब्रजदास' बहावत, विषधर अमृत धार।।

भाईयो! प्रेम का व्यापार मत कीजिये। स्वार्थ से तो जगत भी नहीं रीझता फिर श्रीकृष्ण कैसे रीझेगें? सबके हित की भावना बहुत ही ऊँची है और स्वार्थ तो विकारमय है। प्रेम के समक्ष समस्त साधन निस्तेज हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "ये ढ़ाई अक्षर का प्रेम शब्द सबसे शक्तिशाली है।"

पद (४८)

मैं जननी नित लाल खिलाऊँ।
हाड़-माँस के पूत जगत में, मैं सुत शब्द जनाऊँ।।
भाव-भगति को गरभ लियो है, अन्तर माँहि बढ़ाऊँ।
कोऊ घरी ऐसी नहीं जा दिन, काव्य-पूत नहीं पाऊँ।।
अपनी गोद रखत ज्ञानीजन, लखि मन में हर्षाऊँ।
मेरे सुत को सबहि खिलावत, बार-बार बलि जाऊँ।।
भेंट करूँ सदगुरु के चरना, अस आनन्द मनाऊँ।
मैं शत-कोटि सुतन की जननी, काहे बाँझ कहाऊँ।।
मुतियन-चौक पुरायो आली, छिन-छिन मंगल गाऊँ।
संतन-गोद चढ़यौ सुत मेरो, क्यूं नहीं मोद मनाऊँ।।
नित 'ब्रजदास' जनूं सुत सुन्दर, बाँझपनौ उतराऊँ।
भजन-पूत गोविन्द को जन के, सुतवन्ती कहलाऊँ।।

(ग्रंथकार ने स्वयं को जननी और काव्य रचना को पुत्र के रूप में प्रस्तुत कर अपनी भावना को व्यक्त किया है और गोविन्द के गुणानुवाद रूपी कविता की महिमा को गाया है)

मैं भाव-भक्ति की भावना नहीं जानती तो काव्य पुत्र को

नहीं पाती। (भक्ति करने से ही कविता रचने की शक्ति उत्पन्न होती है) श्रीसद्गुरुदेव के चरणों के आश्रय से अब आनन्द प्राप्त हुआ है। संतों की गोदी में मेरा काव्यरूपी पुत्र बैठ गया है तो मैं आनन्द क्यों न मनाऊँ? ब्रजदासजी कहते हैं- "इस काव्यपुत्र के द्वारा मैं श्रीगोविन्द की प्राप्ति कर लूँगा।"

पद (४६)

मधवा प्रेम-भटी का पी रे।
जाके पिये अमर होई जावै, जीते काल बली रे।।
जो देखो सोई व्याकुल दीखै, कोऊ न होत सुखी रे।
या जग में विषयन-विष पीके, काके ठण्ड परी रे।।
हो निशंक या जग में डोलै, कबहुन होत दुःखी रे।
जिन-जिन पिया भया मतवारा, मन की पीर मिटी रे।।
कहा काम जो उतरै छिन-छिन, निशदिन आँख चढ़ी रे।
चढ़्यौ रहै कबहु नहीं उतरे, ऐसौ प्याला पी रे।।
तू तो पी 'ब्रजदास' बावरे, राम-नाम रस पी रे।
आग लगी तो लगी जगत में, तो को कहा परी रे।।

मैं तो प्रेम की सरिता पी लूँगा। इसके पीने से जीव अमर हो जाता है और काल बली को जीत लेता है। जगत में जिसको देखा है वही दुःखी है। बताइये विषयों को पाकर किसको शांति हुई है? अब मैं निशंक होकर जगत में भ्रमण करता हूँ। कभी-भी दुःखी नहीं होता है। जिन्होंने यह प्रेमरस पाया है, उनके मन की पीड़ा मिट गई है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैंने रामनाम रस पी लिया है, अब मुझे जगत की क्या पड़ी है?"

पद (५०)

कैसो रसिक हियो रसिकन को।
कौन कवि ते होत कल्पना, का कौ बस समुझन को।।
को समझे! काहे कू आली, द्वार खुलत नैनन को।

बात-बात में बहत पनारे, कुण्ड भरत अँसुवन को।।
गुप्त रूप ते रहै जगत में, मान तजैं या तन को।
सदा अकिंचन बने रहत हैं, कहा करै वेधन को।।
कौ जानै मन की गहराई, को परखै प्रेमिन को।
का लीला रस डूब रहे हैं, को समझै चिन्तन को।।
है 'ब्रजदास' एक ही विनती, भाव लखो मो मन को।
श्रीठाकुर मोकूँ कर रखियो, चाकर रसिक जनन को।।

रसिकों का कैसा हृदय है? कोई कभी इसकी कल्पना नहीं कर सकता। रसिकों के अश्रुधारा बहती रहती है। वह जगत में गुप्त रूप से निवास करते हैं, सदा अकिंचन रहते हैं। ऐसे रसिकों के हृदय के गहराई को कौन समझ सकता है? कौन उनकी लीला चिन्तन को समझ सकता है? ब्रजदासजी कहते हैं- "हे ठाकुरजी! आप मुझे रसिकजनों का दास बना दीजिये।"

पद (५१)

करो मन! युगल-चरन को ध्यान।
उत नूपुर की ध्वनि अति प्यारी, इत मुरली की तान।
उत नीलाम्बर शोभित है इत, पीताम्बर-परिधान।।
उत श्यामाजू सकल गुनन-निधि, इत हैं श्याम सुजान।
इत में राजत नन्द-दुलारो, उत में सुता वृषभान।।
इत राजत हैं बेसर मोती, उत कुण्डल हैं कान।
उत में रूनझुन करत किंकनि, इत नूपुर की तान।।
इत नैनन की बांकी चितवन, उत में मृदु मुस्कान।
भज 'ब्रजदास' युगल-पद पावन, सकल गुनन की खान।।

हे मन! तू श्रीराधामाधव के युगल चरणों का ध्यान कर श्रीराधाजी के चरणों की नूपुर श्रीश्यामसुन्दर की मुरली की तान को श्रवण कर उधर नीलाम्बर इधर पीताम्बर है। उधर श्यामा जू सम्पूर्ण गुणों की निधि हैं इधर श्यामसुन्दर सर्वगुण भण्डार

हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "उनके नयनों की बांकी चितवन हैं तो इधर मृदुहास्य है।"

पद (५२)

गोविन्द को गुणगान करो री।
लगे रहो लीला चिन्तन में, मधुर-मधुर रस पान करो री।।
कोमल चित् इत उत मत दीजौ, चरनकमल को ध्यान करो री।
गोविन्द सो गुणखानि कौन है, गुननिधि कौ ज्ञान करौ री।।
मान अमानी कौ नित दीजौ, निज मद को मत मान करो री।
जगत जाल ते मुख को मोड़ो, प्रीतम ओर पयान करो री।।
कहा होत अन-धन को दीन्हे, हरिनाम को दान करो री।
जो 'ब्रजदास' चाह है ब्रज की, भजन करन की बात करो री।।

अरे मन! गोविन्द का गुणगान करो, निरन्तर लीला-चिन्तन में लगे रहो और मधुर रस का पान करो। मन चित्त अत्यन्त कोमल है इसे इधर-उधर मत लगाइये। अमानी को मान दीजिये स्वयं को मान मत दीजिये। जगत के जाल से मुख को मोड़ लीजिये। ब्रजदासजी कहते हैं- "जिसे ब्रज की चाह है वह भजन करने की ही बात करे।"

पद (५३)

आली भाव-भाव की बात।
काहु को भावैं देवी-देवता, हमको साँवर गात।।
काहू को शिव काहु को ब्रह्मा, काहू कौ विष्णु भात।
हमें भात यशुमति को ढोटा, ऊधम बहुत सुहात।।
कर-सरोज कोउ और न चहिये, जद्यपि लेत लुभात।
हम न्योछावर उन हरि कर पै, जो ब्रज धेनु दुहात।।
कल्पवृक्ष सुर नगरी आच्छौ, नहिं चहिये फल पात।
यमुना-तीर कदम्ब की छैंया, हमसौं तजी न जात।।
धाम अनेक जगत के प्यारे, तद्यपि नाहिं सुहात।
हमको तो वृन्दावन भावत, मन माने की बात।।

को 'ब्रजदास' अलख कूँ जानै, चित्त जाय भरमात।
निर्गुण ब्रह्म हमें नहीं चहिये, सगुण ब्रह्म मन भात।।

हे सखि! भाव-भाव की ही तो बात है। किसी को देवी-देवता भाते हैं, हमें तो श्याम सलौने ही अतिप्रिय हैं। जसोदाजी के लाल पर ही हमने स्वयं को न्यौछावर कर दिया है। वे ब्रज की गाय को दोहते हैं, कदम्ब की छाया में बैठकर वंशी बजाते हैं। यद्यपि जगत में अनेक धाम हैं फिर भी हमें ब्रजधाम ही सबसे प्रिय लगता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "हमें निर्गुण ब्रह्म नहीं चाहिये, हमारे लिये तो सगुण ब्रह्म ही प्रिय है।"

पद (५४)

खेलत यशुमति-अजिर-अजन्मा।
जाहि दरश को सुरमुनि तरसत, ताहि लखत निज नैना।।
अलख-अजन्म निगम नित भाखत, अक्षर-अमित-अकर्मा।
ताको रूप मातु निज नैनन, निरखत अपने अँगना।।
जाकौ ध्यान धरत निशिवासर, शिव-सनकादिक ब्रह्मा।
अपने कर सौं नन्दभामिनी, ताहि झुलावत पलना।।
लखि 'ब्रजदास' बाल लीला सुख, मगन रहत दिन रैना।
त्रिभुवनपति जिहिं वेद बतावत, ताहि कहत निज ललना।।

अजन्मा ठाकुरजी जसोदा माता के आँगन में खेल रहे हैं, जिनके दर्शन को देवता और मुनिगण भी तरसते हैं। वेद जिनको अजन्मा, अक्षर, अमित, अकर्मा बताते हैं। उनके ही दिव्य रूप को जसोदा मैया नेत्रों से देख रही है। जिनका ध्यान शिव-सनकादि निरन्तर करते हैं उन्हीं को नन्दरानी पलना में झूला रही हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "इस बाल-लीला के सुख में ही मत्त रहो। वेद जिनको त्रिभुवन पति बता रहा है, वे ही जसोदाजी के लाल हैं।"

पद (५५)

पैंजनियाँ सुर छेड़े रूनझुन के।
नाँचत कान्ह नचावत यशुमति, मगन भई सुन सुन के।।
ताता-थेई-थेई चरन धरत है, ठुमक-ठुमक ठुमकन के।
जगत नचावन वारो नाचत, अजब रूप नाँचन के।।
भाल-चन्द्र पर उरझी अलकें, उरझिर रही उरझन के।
अजब-अनोखा जूड़ा बाँध्यौ, फूल धरे चुन-चुन के।।
लटक-मटक करि मात रिझावत, भाग जगे आँगन के।
भक्तन काज सगुन होई आयो, गुन देखौ निरगुन के।।
को 'ब्रजदास' बखानै या छिन, आनँद आनँदघन के।
हुलसी-हुलसी डोलै मैया, सुख सपने बुन-बुन के।।

श्यामसुन्दर की पायल रुनझुन-रुनझुन कर रही है, कान्हा नाच रहे हैं, जसोदा मैया नचा रही हैं, ता-ता, थई-थई कह-कहकर ठुमक-ठुमक नाच रहे हैं। जगत को नाचने वाले आज स्वयं नाच रहे हैं। मस्तक पर घुँघराली अलकें अत्यन्त शोभा पा रही हैं। माता ने अजब अनोखा जूड़ा बाँध दिया है। भक्तों के लिये ही निर्गुण ब्रह्म सगुण होकर आये हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "आज आनन्द हो रहा है। मैया अत्यन्त प्रसन्न हो रही है।"

पद (५६)

हरि को बाँध थकी महतारी।
भाजत फिरत हाथ नहीं आवत, चतुर चपल गिरधारी।।
बाँधत-बाँधत थके मातृ-कर, बँध न सके बनवारी।
नन्दगाँव की चतुर गोपियाँ, आज हरि ते हारी।।
भोरी मैया समझत नाहीं, जतन करत अतिभारी।
बरसाने की प्रेम-डोरि बिनु, कसन बँधै गिरधारी।।
का 'ब्रजदास' लाभ नैनन को, दरश बिना दुःख भारी।
जिन नैनन पायो लीलासुख, उन नैनन बलिहारी।।

यशोदा मैया हरि को बाँधकर थक गई हैं, वह भाग रही हैं और चतुर चपल गिरिधारी हाथ नहीं आ रहे हैं। मैया बार-बार यत्न कर रही हैं; किन्तु समझ नहीं पा रही हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "जो इस लीला का सुख अपने नेत्रों से देखते हैं मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ।"

पद (५७)

मो मन भावत नन्दकिशोर।
और देव औरन को भावत, मोहे माखनचोर।।
मथुरानाथ, अधीश द्वारिका, पै अपनो नहीं जोर।
जो वृन्दावन रास रचावत, सोई ठाकुर है मोर।।
कृष्ण-कृष्ण सब तत्त्व एक है, पै स्वरूप कछु ओर।
निज-निज भाव रूप भावत है, कहूँ शामल कहूँ गौर।।
चटक-मटक-चंचल-चटकीलो, चपल-चतुर-चित्चोर।
नँचत फिरत गोपिन के आँगन, कबहु साँझ कभू भोर।।
रसिक रसाल रास को रसिया, रसिकन को सिरमौर।
ललित त्रिभंगी लाल-लली संग, आनि बस्यौ मन मोर।।
का 'ब्रजदास' रूचि की कहिये, चित लाग्यौ कित ओर।
वा बाँके की बाँकी चितवन प्रिय लागत है मोर।।

मेरे मन को नन्दकिशोर ही भाते हैं, मुझे तो माखनचोर ही प्रिय है। ठाकुरजी के ही अन्य स्वरूप मथुरानाथ व द्व ारकानाथ पर अपना जोर नहीं है। किन्तु जो वृन्दावन के जो रासबिहारी ठाकुर हैं वही मेरे इष्ट हैं। कृष्ण-तत्त्व एक हैं पर स्वरूप में कुछ भेद है। वृन्दावन के श्यामसुन्दर चटक-मटक युक्त चंचल, चतुर और चितचोर हैं; इसीलिये वे विशिष्ट हैं। वे गोपियों के आँगन में नृत्य करते हैं, रस के रसिया हैं व रसिकों के सिरमौर हैं। उनकी ललित त्रिभंगी है, श्रीराधाजी के साथ विराजमान होकर अति सुशोभित हो जाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "इन बाँके की बाँकी चितवन ने मेरे मन को चुरा लिया है।"

पद (५८)

फिर बाजी मधुबन में मुरली।
फिर आसन डोले योगिन के, ज्ञान समाधि हर ली।।
नाद-ब्रह्म को नाद अनोखा, अनहद तान पकर ली।
अन्तःकरण अनन्दित होवै, अंतर माहिं उतर ली।।
फिर गोपिन नै सुधि बिसराई, बावरिया गति कर ली।
पूँछ उठाय धाई सब गऊवें, जो चरली सो चर ली।।
कण-कण में गुञ्जार भयोरी, सकल समष्टि भर ली।
जो इहिं नाद सुन्यौ अँतर में, भव नदिया तिन तर ली।।
अस प्रभाव वेणू को देख्यौ, भव बाधा झट हर ली।
सुनि 'ब्रजदास' भये मतवारे, धुन हिरदय में धर ली।।

मधुवन में मुरली फिर बज रही है। योगियों के आसन डोल रहे हैं और ज्ञानियों की समाधि भंग हो रही है। नाद ब्रह्म का अनोखा श्रवण सुनकर सबका हृदय आनन्दित हो रहा है। गोपियाँ प्रेम में उन्मत्त हो रही हैं। इस मुरली की नाद को सुनकर संसार की बाधा हट गई है। ब्रजदासजी कहते हैं- "वही लोग वास्तव में मतवारे हैं, जिन्होंने मुरलीनाथ की मुरलीध्वनि को अपने हृदय में बसा लिया है।"

पद (५९)

डारी रे तैने कैसी मोहिनी डारी।
कछु न काम की रही रे जगत में, सुधबुध भूली सारी।।
आज बाग में घेर लई री, ब्रज बाँकौ बनवारी।
नैन-बान को जादू करकै, कर डारी मतवारी।।
बहौत दिना में आज मिली है, रूक जा री नथवारी।
बैंया पकर कै मोसों बोल्यौ, कित जावत है प्यारी।।
मीठी पीर जगी मम उर में, गजब कियौ गिरधारी।
कह्यौ न जाय कछु रह्यौ न जाय री, कस उरझन में डारी।।
एक न सुनै नन्द कौ ढोटा, ढ़ीठ भयो बनवारी।

हाय! श्याम अब जावन भी दो, तुम जीते मैं हारी।।
निज जन कूँ या भाँति देत सुख, ब्रज में लीलाधारी।
यशुमति-सुत की या लीला पै, 'बिरजदास' बलिहारी।।

हे मनमोहन! आपकी मुरली अत्यन्त मनोहर है, जो उसे सुन लेता है वह अपने देह की सुध-बुध ही भूल जाता है। जगत के किसी कार्य का नहीं रह जाता है। श्यामसुन्दर गोपियों को रोककर विविध हास-परिहास करते हैं और अपनी मीठी-मीठी बोलन से रीझाते हैं। श्यामसुन्दर की एक भी बात को गोपियाँ नहीं सुनती हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "जसोदानन्दन की लीला देख-देखकर हम बलिहारी जाते हैं।"

पद (६०)

हम तो चाकर श्याम सखी के।
सखी-वेष में ओ मोरी आली! हरि लागत अति नींके।।
सजि सिंगार चले श्यामा ढिंग, नैन-बाण ले तीखे।
लज्जित ह्वै गयी मदन-प्रिया भी, नखरे देख लली के।।
सुन्दर पुष्प सजे जूडे में, कण महके धरनी के।
घुँघराली अलकावलि लखिकैं, उड़ गये होश अली के।।
इन्द्र धनुष के सम रंग बिखरे, रंगभीनी चुनरी के।
दामिनि सम दमकत हैं हीरे, नागर की नथनी के।।
हाव-भाव ते छलत प्रिया को, देखो रंग छली के।
धार लिये अपने उर आली, सारे गुन सजनी के।।
सौतन बनहि खिजावत राधे, चंचल चरित हरि के।
नित 'ब्रजदास' ठगत गोपिन को, ठाकुर हैं ठगनी के।।

हम तो श्यामसुन्दर के चाकर हैं, वे सखी रूप में सजकर विविध प्रकार की लीलाऐं करते हैं, पुष्पों का चूड़ा सजा रखा है, इन्द्रधनुष के समान विविध रंगों की चूदड़ी पहने हुए हैं, दामिनी के समान दमकते हुए हीरे की नथ धारण की है, हाव-भाव से श्रीप्रियाजी को रिझा रहे हैं। ब्रजदासजी कहते हैं-

"श्यामसुन्दर की सखी वेष धारण लीला अत्यन्त मनोहारी है।"

पद (६१)

करो मन! हरि-दासन को संग।
जिनके संग सुमति उपजत है, मिलत सदा सत्संग।।
जिनको शील सदा ही पावन, छुअत न अंग अनंग।
हरि के रंग सदा रस-राते, चढ़त न दूजौ रंग।।
स्वेद-कम्प-अश्रू तन पुलकै, थिरकैं सारे अंग।
नित आनन्दकन्द-रस डूबत, उर में रहत उमंग।।
जिनको संग किये ते साधो, सुधरै सारे ढंग।
अपने म्यान धरी रह जावै, कलिकाल की खंग।।
हरि-तरूवर ते इहिं विध लिपटे, चन्दन-तरून-भुजंग।
नित 'ब्रजदास' रहत परहित-रत, करत न काहू तंग।।

हे मन! तुम हरि के दासों का संग करो। इनके संग से सुमति उत्पन्न होती है और हरि का रंग लग जाता है। फिर जगत का कोई भी रंग नहीं चढ़ पाता। सत्संग से स्वेद, कम्प, अश्रु इत्यादि प्रेम लक्षण प्रकट हो जाते हैं। साधु-संग करके सबका सुधार हो जाता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "साधुसंग सदा परोपकार में लगे रहते हैं वे कभी किसी को उद्वेग नहीं देते।"

पद (६२)

श्रावण मास सलौनौ सजनी, सुन्दर सजन निहारौ री।
राधे संग नित झुला झुलै, मुरलीधर मतवारौ री।।
रेशम डोर झूलना प्यारौ, रत्न जटित मुक्ताहल वारौ।
आज निहाल भई मोरी अँखियां, निरखत नन्द दुलारौ री।।
दादुर-मोर-पपीहा बोलै, सुर नर मुनिजन को मन डोले।
आज युगल झूलत हैं झूला, वृन्दा-विपिन मंझारो री।।
गरजत मेघ चमक रही बिजुरी, मैं तनमन से भीगी सिगरी।
उत जलरस, इत प्रीतम रस है, भूली साँझ-सकारौ री।।
ताल-तडाग भरे चहुँ ओरा, नाँच रहा है मन का मोरा।

तीन लोक को सुख मोरी प्यारी, यमुन पुलिन पर वारौ री।।
को 'ब्रजदास' मरम यह जानैं, प्रेम पंथ की गति पहिचानै।
लीला सुख को दान करत है, रसिकन को रखवारौ री।।

हे सजनि! सुन्दर श्रावण मास आ गया है। राधारानी के संग मुरलीधर श्यामसुन्दर झूला झूल रहे हैं। रेशम की डोर रत्न जड़ित सिंहासन है। दादुर-मोर-पपीहा सुन्दर स्वर कर रहे हैं। जो मुनियों के मन को भी विचलित कर रहे हैं। वृन्दावन के मध्य में युगल सरकार का झूला पड़ा है, मेघ गरज रहे हैं, ताल-तालाब भरे हुए हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "यह झूलन लीला का सुख कोई विरले रसिकजन ही ले पाते हैं।"

पद (६३)

राधे जू के चरनन की बलिहारी।
चाकर बन्यो फिरत है ठाकुर, चतुराई सब हारी।।
चौदह भुवन लोक तीनन के, अटल छत्र के धारी।
श्रीराधे की कृपा-कोर के, सब ही भये भिखारी।।
हमरी-तुमरी कौन चलाई, कौन साध है भारी।
ब्रज-भक्ति की कृपा मांगते, द्वार खड़े त्रिपुरारी।।
जहँ-जहँ चरन धरैं धरनी पै, श्रीवृषभानु दुलारी।
तहँ-तर्ह नैन बिछावत अपने, स्वयं निकुँज बिहारी।।
नित 'ब्रजदास' वास वृन्दावन, कब पई हौं हरिप्यारी।
श्रीवृषभानुसुता अब मोहे, लीजौ बेगि सँभारी।।

हम तो श्रीराधे जू के चरणों पर बलिहारी जाते हैं। जिन चरणों के चाकर बनकर ठाकुर ठकुराई भूल जाते हैं। चौदह भुवन तीनों लोकों के स्वामी राधारानी की कृपा प्राप्ति के लिये भिक्षुक बन जाते हैं। जिनके द्वार पर खड़े होकर भोलेनाथ भी ब्रजभक्ति मांगते हैं। वृषभान दुलारी जहाँ-जहाँ चरण रखती हैं वहाँ-वहाँ ब्रजबिहारी कृष्ण अपने नयन बिछाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे किशोरीजी! मुझे वृन्दावन का वास कब मिलेगा?

आप मेरी संभाल कीजिये।"

पद (६४)

फाग बिरज में भारी रे रसिया, घेर लिये गिरधारी रे रसिया।
झुण्ड सखिन के लखि बौराये, जाय छिपे बनवारी रे रसिया।।
कोऊ पीरी कोऊ लाल भई री, कोउ गोरी कोउ कारी रे रसिया।
अब के लालजी खबर परैगी, बहुत मोहनी डारी रे रसिया।।
ग्वाल-बाल सब भाग लिये री, चढ़ि आई ब्रजनारी रे रसिया।
कोउ के गुलाल-अबीर कोऊ के, कोऊ के हाथ पिचकारी रे रसिया।।
अब खावो गालन पै गुलच्या, अब न चलै हुशियारी रे रसिया।
कहा करै अब नन्दराय जू, कहा करैं महतारी रे रसिया।।
जब देखौ जब चकमा दै गये, आज सुनोगे गारी रे रसिया।
पुरुषपने की ठसक छोड़ द्यो, बनि आवौ झट नारी रे रसिया।।
आज श्याम इकली मत जानौ, संग सखिन राधा प्यारी रे रसिया।
लखि 'ब्रजदास' प्रेम की लीला, तन-मन-धन सब वारी रे रसिया।।

आज ब्रज में बड़ा भारी फाग महोत्सव हो रहा है। सखियों के झुण्ड ने गिरिधारी को घेर लिया है और वे छुप गये है। सखियाँ कोई लाल, कोई पीत, कोई गौर रंग में रंग गई है। किसी ने गुलाल तो किसी ने पिचकारी ले रखी है। वे कह रही हैं- अब श्यामसुन्दर की चतुराई नहीं चलेगी। आज तो इन्हें हमारी लट्ठमार होली का सामना करना पड़ेगा। ब्रजदासजी कहते हैं- "सखियाँ श्यामसुन्दर को सखी वेश में सजाना चाहती हैं। इस लीला पर हम अपना तन-मन अर्पित करते हैं।"

पद (६५)

करो मन! श्रीवृन्दावन वास।
जहँ नित होत प्रिया-प्रियतम को, परिकर संग विलास।।
शेष-महेश-सुरेश अनँत सुर, लीन्ह परम-अवकास।
जहँ पर वास करत है बनकर, लतन-पतन अरू घास।।
अनँत कोटि गोपिजन कें संग, होत रहत नित रास।

नित्य-नवीन निरन्तर ही रस, बरसत बारहों मास।।
छांव-कदम्ब पुलिन कालिन्दी, गोधन करत निवास।
दर्शन करि-करि लेहु नैन-सुख, हिय अति होत हुलास।।
छाँड़ि स्वर्ग-अपवर्ग सकल सुख, करहु धाम नित वास।
रसिक जनन की चरन चाकरी, कर रहियो 'ब्रजदास'।।

हे मन! तू वृन्दावन का वास कर जहाँ प्रिया-प्रियतम का रस विलास होता रहता है। शेष-महेश-सुरेश इत्यादि अनन्त देवता भी यहाँ परम विश्राम प्राप्त करते हैं और लता-पताओं में आकर रहते हैं। अनन्त कोटि गोपियों के संग में श्रीकृष्ण रासलीला करते हैं। यमुनाजी के पावन पुलिन पर कदम्ब की छांव में श्यामसुन्दर विद्यमान हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे मन! तू इनका निरन्तर दर्शन कर एवं स्वर्ग, मोक्ष इत्यादि सुखों की अभिलाषाओं को त्यागकर रसिकजनों की चाकरी कर।"

पद (६६)

मोहे वृन्दावन अति भायो।
ठौर-ठौर मेरो ठाकुर बैठ्यो, लागत ठाठ सवायो।।
यमुन-पुलिन रेणु अति पावन, लोटि-लोटि सुख पायो।
निधिवन भयौ निधि मो मन की, सेवा कुँज सुहायो।।
कहूँ गोविन्द कहूँ भयौ बिहारी, कहुँ हरि रूप बनायो।
रसिकन आज रंगीलो मोहन, विविध रूप प्रगटायो।।
बीच बजार ठगी-सी ठाड़ी, लीन्हो चित्त चुरायो।
रस की बात कहा कहूँ आली, चतुर चोर चित छायो।।
राधे-राधे की धुनि सुनि कै, नाम सुधा रस पायो।
पैंड-पैंड कर संत बिराजै, दर्शन करि हर्षायो।।
का 'ब्रजदास' कहूँ बलिहारी, वृन्दारण्य बुलायो।
करूणा करि के कुँवर-कुँवरि नै, अपनो धाम दिखायौ।।

मुझे वृन्दावन अतिप्रिया लगता है। यहाँ ठौर-ठौर में ठाकुरजी विद्यमान हैं। यमुना की पावन रज है जिसमें लुण्ठित

होने पर परम सुख की प्राप्ति होती है। निधिवन व सेवाकुञ्ज को देखकर हृदय द्रवित हो जाता है। यहाँ निरन्तर राधे नाम की ध्वनि होती रहती है। सदा सर्वदा संतों का वास है जिनका दर्शन अतिहर्ष प्रदायक है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मुझे तो वृन्दावन धाम ने बुला लिया है। युगल ने कृपा करके मुझे अपना निज धाम दिखला दिया है।"

पद (६७)

बिहरत ब्रह्म बिरज के बाग।
रुचिर सराहत शेस-शारदा, लतन-पतन के भाग।।
जेहिं बन बसहिं प्रेम रस पीवत, सुर-नर किन्नर-नाग।
सोई वृन्दावन वेद पुकारत, अनँत अखण्ड अदाग।।
विविध भाँति सुरतरु की छैंया, शुक-पिक छेड़त राग।
दरश करत पंछी सुख पावत, केकि, कीर अरु काग।।
वृन्दा विपिन अलिन को गुँजन, पुहुपन प्रेम-पराग।
दौरि-दौरि योगी-यति आवत, ज्ञान-समाधी त्याग।।
को 'ब्रजदास' पात्र खेलन को, कृष्ण-प्रेम रस-फाग।
राग-द्वेष जाके घट नाहीं, सोई जानत अनुराग।।

जहाँ साक्षात् ब्रह्म ब्रज के बाग-वनों में विचरण कर रहा है। शेष-शारदा यहाँ के लता-पता के भाग्य को मान रहे हैं। वेद वृन्दावन को अखण्ड बता रहा है। विविध प्रकार के वृक्ष हैं जिन पर शुक-पिक अपने राग गा रहे हैं और भ्रमर की गुंजन से प्रेम पराग उत्पन्न हो रहा है। योगी-समाधि, ज्ञानी-ज्ञान को त्यागकर दौड़-दौड़कर यहाँ पर आ रहे हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "यह कृष्णप्रेमरस महोत्सव की भूमि है यहाँ पर रागद्वेष नहीं है। इस तत्त्व को जानने वाला ही अनुरागी है।"

पद (६८)

रे मन ब्रजरज को कर वन्दन।
जेहि रज सुन्दर गोप रूप धरि, लोटत ब्रह्म सनातन।

जेहि रज सुर-नर ही नहीं पूजित, पूजत पुरुष पुरातन।।
शुक सनकादिक, शिव ब्रह्मादिक, करत रहत आराधन।
जेहि रज कान्हा हू तन मण्डित, फिरत रहत नित कुँजन।
तेहि रज लागी मदन समाधि, नमन करत ब्रजनन्दन।
तेहि रज में मुक्ति हू लौटत, लै संग ज्ञान-विरागन।।
जेहि रज जगत बन्ध है जग में, रसिकन की जीवन धन।
कर 'ब्रजदास' तिलक तेहि रज को, तजहु काठ को चन्दन।।

अरे मन! तू ब्रजरज की वन्दना कर ले। यह रज अत्यन्त सुन्दर है इसमें सनातन ब्रह्म लुण्ठित होता है। यह रज देवता और मनुष्य नहीं बल्कि शिव-शुक-सनकादिक भी आराधना करते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "ब्रजरज का तिलक मस्तक पर लगाओ।"

पद (६६)

ब्रज में ब्रह्म गयो बौराय।
अति आनन्द मनावत मन में, रसिकन जूठन खाय।।
बिना दाम ही बिक्यौ फिरत है, पाछै-पाछै धाय।
क्रीतदास रसिकन को बन कैं, अपनो भाग्य सराय।।
ब्रज बीथिन में भयौ बाबरो, गोपिन लियौ लुभाय।
नैंक छाछ पै नाँचत डोलै, कवन भेद समुझाय।।
वृन्दा-विपिन खोजतो डोलै, गिरत पछारी खाय।
बन्यौ फिरत जोगी ब्रज बीथिन, राधा-राधा गाय।।
अहा प्रेम! कैसी गति कीन्ही, मो सौं कही न जाय।
श्रीराधा की चरण रेणुका, अपने अंग रमाय।।
अहो भाग! ब्रज सी बनितन को, दुर्लभ दर्शन पाय।
लखि 'ब्रजदास' मान की लीला, उर आनन्द समाय।।

इस ब्रज की रज में ब्रह्म रसिकों का झूठन पा रहा है और बिना मूल्य ही विक्रय होकर उनके पीछे-पीछे घूम रहा है। ऐसा रसिकों का दास बन गया है। गोपियाँ थोड़ी-सी छाछ पर

उसे नचा रही हैं। वह प्रेम में उन्मत्त होकर राधा नाम को गा रहा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "इस लीला के दर्शन से अति आनन्द प्राप्त हो रहा है।"

पद (७०)

लतन में लुकत लाड़ली-लाल।
ढूँढ़त फिरत झुण्ड सखियन के, कित राधे-गोपाल।।
अन्तर्धान होत कभू प्रगटत, रचि कौतुक नंदलाल।
छिन में प्रेम, छिन हि में विरहा, बाढ़ि रहे प्रतिपाल।।
ललितादिक खोजत ब्रज ललना, कितहु लुके नंदलाल।
ललित लवंग लतन छुपि बैठे, ललित-त्रिभंगी लाल।।
लुकन-छुपन की अतिप्रिय लीला, दुँहुन रचि इहिं काल।
आज सखिन को देत अजब सुख, हाँसत दै-दै ताल।।
इहिं लीला को सुर रस लेवत, पीवत रूप रसाल।
लखि 'ब्रजदास' दुँहुन की शोभा, पल-पल होत निहाल।।

ब्रज की लता-पताओं में लाड़ली-लाल छुपे हुए हैं। सखियाँ उन्हें ढूँढ़ रही हैं कि हमारे राधाकृष्ण कहाँ चले गये। वे कभी अन्तर्ध्यान होते हैं तो कभी प्रकट होते हैं। क्षण में प्रेम और क्षण में विरह उत्पन्न होता है। ब्रज की सखियाँ ललिता-विशाखा इत्यादि श्यामसुन्दर का अनुसंधान कर रही हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "यह लुकाछुपी लीला देखकर देवता भी मंत्रमुग्ध हो गये हैं।"

पद (७१)

बाँध्यौ! ब्रह्म बिरज की नारी।
ब्रज गोपिन के प्रबल प्रेम में, आन बँध्यौ गिरधारी।।
सुर-नर-मुनिजन पचि-पचि हारे, रीझयौ नाहिं मुरारी।
ताहि रिझायौ ब्रज-बनितन नैं, दै-दै मीठी गारी।।
शेष-सुरेश-गनेश सकल सुर, जाहि रटत त्रिपुरारी।
ताहिं नंचायौ अहिर-भामिनि, नैंक छाछ तब डारी।।

योगी-यति बाँध नहीं पाये, अनन्त-अखण्ड-अपारी।
ताही बाँध लियो आंगन में, ऊंखल ते महतारी।।
साधन करि ज्ञानीजन हारे, बंध न सक्यौ भयहारी।
धनि 'ब्रजदास' प्रेम गोपिन कौ, बाँध लियो बनवारी।।

ब्रज में गोपियों ने ब्रह्म को अपने प्रेम डोर से बाँध लिया है। देवता-मनुष्य-मुनि भी जिन्हें जान नहीं पाते उन्हीं कृष्ण को गोपियों ने गारी देकर वश में कर लिया है। शेष-महेश-सुरेश-गणेश जिनका निरन्तर स्मरण करते हैं, उन्हीं को वे थोड़ी-सी छाछ पर नचा रही हैं। योगी-यति जिनका ध्यान करते हैं। उन्हीं को यशोदा मैया ने ऊखल से बाँध लिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "सम्पूर्ण साधना को करके ज्ञानीजन हार गये; किन्तु धन्य हैं वे गोपियाँ जिन्होंने श्रीकृष्ण को प्रेमपाश में बद्ध कर लिया।"

पद (७२)

मैं तो सब विधि साधनहीन।
तन रोगी मन विकृत मेरो, निपट विवेक विहीन।।
सदा प्रमाद कियो सेवा में, मैं मतिमन्द-मलीन।
पापन ही में लिप्त रह्यौ हूँ, पुण्य कबहु नहीं कीन्ह।।
कदाचार में लीन रह्यौ हूँ, कुलाचार ते हीन।
कहा लाभ जो आय कहायो, जग में परम कुलीन।।
का विधि भजन बनैगो स्वामी, का बल भव तर लीन्ह।
मैं तो बस इतनो ही जानूं, हरि-सिन्धू मैं मीन।।
'बिरजदास' विश्वास हरि कौ, बेगि बाँह गह लीन्ह।
अपने हाथ उठाय लीजियौ, द्वार पर्‌यौ इक दीन।।

हे प्रभो! मैं सब प्रकार से साधनहीन हूँ, तन रोगी और मन विकृत हो गया है, निपट ही अविवेक हूँ, सदा प्रमाद में संलिप्त रहकर सेवा की है, मति मंद मलिन हूँ, पापों में रत हूँ, पुण्य कभी नहीं किया है। आपका भजन किस प्रकार से बनेगा? हे हरि! आप सिन्धु तो मैं मीन के समान हूँ। ब्रजदासजी कहते

हैं– "श्रीहरि का ही विश्वास है आप बाँह पकड़कर खींच लीजिये।"

पद (७३)

मैं गिरही–साधक कहलाऊँ।
का गिरहिन सौं भजन न होवै, क्यों संन्यास लिवाऊँ।।
कठिन तपस्या करके काहे, यो तन व्यर्थ सुखाऊँ।
सुमिरन–भजन करूँ घर बैठे, काहे वन को जाऊँ।।
गिरही–धर्म बहौत ऊँचो है, निशदिन पुण्य कमाऊँ।
गो–ब्राह्मण अरू संतन सेवा, या ही मैं कर पाऊँ।।
मात–पिता–गुरुदेव–अतिथि, दर्शन करि न अघाऊँ।
सकल देव गिरही घर आवत, पूजि–पूजि सुख पाऊँ।।
तन राखूँ या जग के माहीं, मन ते गोविन्द गाऊँ।
जुगती जान लई सतगुरु ते, या विधि नाथ रिझाऊँ।।
कहा कमी गोविन्द के घर में, काहे रंक कहाऊँ।
'बिरजदास' सुख सकल भोग कै, अन्त अमरपद पाऊँ।।

मैं गृहस्थ–साधक कहलाऊँगा। क्या घर में भजन नहीं होता? तो फिर मैं क्यों संन्यास लूँ? कठिन तपस्या करके क्यों व्यर्थ मैं तन को सुखाऊँ? घर में बैठकर ही श्रीहरि का सुमिरन करूँगा; फिर वन जाने की क्या आवश्यकता है? गृहस्थ–धर्म भी तो बड़ा ऊँचा है। इसी में रहकर ब्राह्मण और संतों की सेवा करूँगा, माता–पिता–गुरु–अतिथि की सेवा करता रहूँगा। तन को जगत में रखूँगा और मन से गोविन्द का गुणगान करूँगा। ब्रजदासजी कहते हैं– "सब सुखों को प्राप्तकर अन्त में श्रीभगवान के मंगलमय धाम को जाऊँगा।"

पद (७४)

कैसी हीन दशा या मन की।
हरि–पद पंकज छाँड़ि मूढ़मति, आस करत जन–जन की।।
महत् पुरुष को संग न चाहत, राह तकत दुर्जन की।

हरि की चर्चा खारी लागत, बात करत विषयन की।।
असत् विषय में रति राखत है, रूचि न रखत सुमिरन की।
आत्म तत्त्व को बौध बिसार्‌यौ, सुधि राखत है तन की।।
शील-सनेह-सृजन नहीं जानत, प्रीत तजी सरलन की।
चपल-चतुर-चालाक भयौ है, चाल चलत कुटिलन की।।
व्यर्थ भये तोरे श्रवण नैन मुख, सुधि न भई संतन की।
हरि मन्दिर के निकट रहत भी, रूचि न जगी दर्शन की।।
राम नाम की भूल कमाई, लगी रही बस धन की।
रे मतिमन्द! तोर कारन ते, लाज गयी पुरखन की।।
अंग-अंग सब शिथिल भये हैं, ज्योति गयी नैंनन की।
तोर हृदय का दिन उपजैगी, रे 'ब्रजदास' भजन की।।

हे प्रभो! इस मन की कैसी दशा हो गई है? हरि के चरणकमल को छोड़कर दूसरे की अपेक्षा करता है। संत पुरुषों को तो चाहता नहीं है और दुर्जनों की राह को तकता है। सर्वदा असभ्य विषयों में रूचि व सुमिरन में अरूचि रखता है। आत्म-तत्त्व बोध को भुलाकर तन की सुधि रखता है। शील-स्नेह को तो जानता नहीं बल्कि सरल लोगों की प्रीति को ही त्याग दिया है। हरिनाम की कमाई को छोड़कर धन की आस में ही लगा रहता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "सब अंग शिथिल हो गये हैं, नेत्रों की ज्योति चली गई है फिर भी हे मन! तू कब भजन की बात सोचेगा?"

पद (७५)

जिनके हिये दीनता आई।
जीव-जीव के मीत भये वे, गई निठुरता करूणा छाई।।
अहा दैन्य कैसी गति कीन्ही, उर में आनि बसी लघुताई।
काहू ते कोऊ चाह रही ना, छूट गये सब मान-बड़ाई।।
बड़े होय सब कछु खो दीन्हो, अहम् सकल बुद्धि भरमाई।
नन्हें हो कैं जीत लियौ जग, सन्त लियौ चरनन बैठाई।।

सिगरो गात छिनहि छिन भीजै, प्रेम-झरी आँखिन में आई।
जिनको हियो द्रवित भयो तिनके, उर आनँद की बदरी छाई।।
अहंकार है बीज अहित को, कबहुन परमारथ पथ जाई।
'बिरजदास' जे गही दीनता, ते जन धन्य भये री माई।।

जिन मनुष्यों के हृदय में दीनता आ गई है वह जीवमात्र के मित्र बन गये हैं। दीनता की कैसी महिमा है कि हृदय में लघुताई बस जाती है? किसी से भी कुछ भी पाने की चाह नहीं रहती और मन की कामना छूट जाती है, अहम् नष्ट हो जाता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "अहंकार को अहित का बीज है, इससे तो कभी-भी परमार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती।"

पद (७६)

मेरौ मन इत आवै उत जावै।
या ते कछू बन्यौ नहीं अजहूँ, बिनहि बात इतरावै।।
उचक्यौ फिरै सदा मर्कट सौ, कबहुन गति ठहरावै।
करि संकल्प-विकल्प अनेकन, नाना भांति नँचावै।।
विषयन चसक परी है ऐसी, स्वान गति ते धावै।
कौन उपाय करूँ या सठ को, हरि सुमिरन नहीं भावै।।
विषयन कीच मच्यौ जग मांही, गुरु बिन कौन बचावै।
ज्यों-ज्यों ऊपर आनो चाहूँ, भीतर धँसतो जावै।।
कलिमल अंगीकार करत है, उज्ज्वल पथ नहीं आवै।
प्रेम पंथ स्वीकार नहीं है, कुटिल कुमारग जावै।।
कौन दिना 'ब्रजदास' होयगौ, जा दिन या गति पावै।
तजि हराम को हेत मन्दमति, राम नाम रम जावै।।

हे प्रभो! मेरा मन कभी इधर तो कभी उधर जाता है, इससे अभी तक तो कुछ भी नहीं बना है सर्वदा मरकट की तरह भ्रमण करता रहता है। भेद प्रकार के संकल्प विकल्प सोचता है अब मैं सत्य को समझने के लिये कौनसा उपाय करूँ? ज्यों-ज्यों ऊपर आना चाहता हूँ, त्यों-त्यों गर्त में चला

जाता हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "इस मन को प्रेम पंथ स्वीकार नहीं है बल्कि कुटिल पंथ की ओर ही दौड़ता है।"

पद (७७)

विनती सुनियौ मन-महाराज।
जो मो पै तुम ही नहीं रीझे, कस रीझहिं ब्रजराज।।
तुम सिगरी इन्द्रिन के स्वामी, भोगिन के सरताज।
तुमरी कृपा बिनु कबहु न सुधरै, हरि दासन को काज।।
मैं हूँ अंश सनातन हरि कौ, सकल सुखन कौ ताज।
बार-बार भव कूप परत हूँ, एक तुम्हारे काज।।
जनम-जनम ते करतो आयो, जग-चिन्तन महाराज।
अब के तो हरि-चिन्तन करियो, रखियौ मोरी लाज।।
एसो कहा बिगार्‌यौ है जो, गिरी दीन पै गाज।
कब लौं यूँ करते ही रहोगे, मोर दुःखी पै राज।।
बहुत नच्यो 'ब्रजदास' बावरो, थाक्यौ इत-उत भाज।
अब तो थिर हो जईयो स्वामी, ओ चंचल-महाराज।।

हे मन महाराज! आप मेरी विनती को सुनिये। यदि तुम मुझ पर दया नहीं करोगे तो ब्रजराज कृष्ण कैसे मिलेंगे? तुम तो इन्द्रियों के स्वामी हो, तुम्हारे अनुसार ही इन्द्रियाँ चलती हैं। इसे नियंत्रण में करके रखो। मैं सनातन श्रीहरि का अंश हूँ, बारम्बार संसार कूप में गिर रहा हूँ, इस बार तो हरि का चिंतन करने दो। ब्रजदासजी कहते हैं- "अब तुम चंचलता को त्यागकर स्थिर हो जाओ।"

पद (७८)

मन रे! बहु सोयो अब जाग।
दुर्जन संग बहुत दिन लाग्यो, अब संतन संग लाग।।
अब तो हँसन संग लागि रे, कुटिल मति कूँ त्याग।
कबलौं मूढ़मति या जग में, बन्यौ फिरेगौ काग।।
का दिन तोहि सुमति उपजैगी, कब जागेंगे भाग।

विषयन-राग छाँड़ि कब करि हौं, हरिपद सौं अनुराग।।
कहा लाभ वन-उपवन डोल्यौ, रस चाख्यौ नित जाग।
भ्रमर भयो पर पा नहीं पायौ, प्रभुपद प्रेम-पराग।।
तजि 'ब्रजदास' अनित्यन कौ संग, उर में धार विराग।
अविनाशी सौं प्रीत लगा कै, पा रे अचल सुहाग।।

हे मन! तू बहुत सो लिया अब जाग जा। दुर्जनों के संग बहुत दिन लगा रहा अब तो संतों का संग कर। कुटिल मति को त्यागकर कब तक जगत में काग बनता फिरेगा? किस दिन तुझे सुमति उत्पन्न होगी और तेरे भाग्य जागृत होंगे? ब्रजदासजी कहते हैं- "विषयों का संग छोड़कर श्रीहरि में प्रीति लगा। वे ही अचल सुहाग हैं।"

पद (७६)

मन रे सेवन कर एकान्त।
जगत-भीड़ में कछु नहीं मिलनौ, काह भयौं है भ्रान्त।।
कहा पर्‌यौ बक-बक करबे में, सब कुछ होत दुखान्त।
मौन रहे ते सब कुछ मिलि है, जीवन होत सुखान्त।।
काम-क्रोध अरु लोभ-मोह मद, दस्यू है दुर्दान्त।
बिनु एकान्त भजन के कीन्हे, कबहू न होंगे शान्त।।
जो चित्त को ठहरानो चाहो, तो पथ है एकान्त।
चंचल गति के मानव जग में, रहत सदा आक्रान्त।।
उद्वेलित-उद्विग्न-मना जन, रहत कबहूँ नहीं शान्त।
जिनको मन एकान्त प्रिय है, तेहि पावत श्रीकान्त।।
जाके फल 'ब्रजदास' बसत है, सदा प्रेम के प्रान्त।
एक के माहीं अन्त है मेरो, यहि साँचो एकान्त।।

हे मन! तू एकान्त का सेवन कर। जगत की भीड़ में कुछ नहीं मिलेगा। व्यर्थ की बकबक करना छोड़ सब दुःख स्वरूप है। मौन रहने से कुछ मिल जायेगा और जीवन सुखी हो जायेगा। काम-क्रोध-मोह-लोभ मत कर ये तो तेरे दस्यु हैं।

अगर चित्त को ठहराना तो एकान्त में आना पड़ेगा। चंचल गति का मानव जगत में सदा आक्रान्त बना रहता है, उससे कभी-भी शान्ति नहीं मिलती। ब्रजदासजी कहते हैं- "एकान्त प्रिय व्यक्ति को ही श्रीकान्त मिलते हैं। एक हरि में ही सच्चा प्रेम है, यही वास्तविक एकान्त है।"

पद (८०)

गहो रे मन! सार की बात गहौ।
मन ते हरि को चिन्तन करियो, मुख ते राम कहौ।।
हरि-गुरु-कर-अवलम्ब पाय कै, निशिदिन बचे रहौ।
बाढ़ ग्रस्त है विष की नदिया, काहे जाय बहौ।।
कामी-क्रूर-कुटिल संग काहे, दारूण दुक्ख सहौ।
याते तो आच्छो है जग में, निपट असंग रहौ।।
कपटीजन ते कहा मिताई, निशिदिन दूर रहौ।
जिनके उर में साँच बसत है, उनके चरण गहौ।।
असत् संग छाँड़ो छिन माहीं, सत के संग रहौ।
नित 'ब्रजदास' संत-पद चाँपो, उर आनन्द लहौ।।

हे मन! सत्य को मान लो, हरि का चिन्तन करो। श्रीहरिगुरु का चरणाश्रय करो, दिवारात्रि जगत से बचे रहो। ये तो बाढ़ ग्रस्त नदी है। इसमें जाकर क्यों बहते हो? कामी-कुटिल-क्रोधी का संग त्याग दो, कपटीजन से दूर रहो। ब्रजदासजी कहते हैं- "संतों का संग और उनकी चरणसेवा करो, हृदय आनन्दित होगा।"

पद (८१)

प्रभुजी कैसे बनूँ मैं योगी।
असद्-विषय मोते छूटत नाहीं, जनम-जनम को भोगी।।
प्रेम-तत्त्व मो में लेष नहीं है, कामी कुटिल-कुयोगी।
मन-भँवरा उड़्तो ही डोलै, रूप-रसिक-रस लोभी।।
नित विपरीत आचरण कीन्हे, विकट-विकार-वियोगी।

चपल चित्त की चंचल वृत्ति, राखहुँ कवन निरोगी।।
मोर कुलच्छन केहि विध होवैं, सत्पथ के सहयोगी।
अब ऐसै में कौन सुझावै, सरल-सुपंथ-सुयोगी।।
सकल देव बिसरावें छिन में, कौन सराहैं भोगी।
को 'ब्रजदास' गुरु बिन राखै, चरन-शरन भव रोगी।।

हे प्रभो! मैं कैसे भक्ति-योगी बनूँ? असद् विषय मुझे छोड़ते ही नहीं है। जन्म-जन्मान्तर का भोगी हूँ, प्रेम-तत्त्व लेशमात्र भी नहीं है। मन भ्रमण तो सदा ही उड़ता ही रहता है और रूप-रस-गन्ध शब्द का लोभी बना रहता है। नित्य ही विपरीत आचरण करता है। चंचल चित्तवृत्ति कब निरोगी होगी। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के बिना मुझ भवरोगी को कौन रखेगा?"

पद (८२)

गोविन्द! केहि विध भजन बनैगो।
लम्पट लागि रहे मो मन के, कौन विधि सुधरैगो।।
उलटी चाल चलै कुटिलन सम, नित्य प्रपञ्च करैगो।
यह नहीं जानत इन लच्छन ते, मोह के पाश बँधैगो।।
पाल कुटुम्ब मोह-मत्सर को, कब लौं यूँ इतरेगौ।
प्रेम-पूत बिन भयौ निपुतो, का दिन पूत जनैगो।।
कब स्वीकार करहिं निज अवगुन, कब अपराध गिनैगो।
छाँड़ि असत को पंथ कौन दिन, सत को पंथ चुनैगो।।
बिनु अनुभव वाणी के जग में, अटपट बैन कहैगो।
पोथी पढ़ि पण्डित बन बैठयो, का दिन गुनन गुनैगो।।
बंजर भई भूमि हिरदय की, शुष्क-ज्ञान का दैगो।
सठ 'ब्रजदास' तोर उर का दिन, प्रेम को बीज उगैगो।।

हे गोविन्द! आपका भजन किस प्रकार से बनेगा? मेरा मन लम्पट कब सुधरेगा? सर्वदा विपरीत और कुटिल चाल चलता है, नित्य प्रपञ्च में फंसा रहता है। कब निज अवगुण को

स्वीकार करना सीखेगा, असत् पंथ को त्यागकर सत् पंथ पर चलेगा। ब्रजदासजी कहते हैं- "शुष्क ज्ञान क्या दे सकता है? वह दिन ही श्रेष्ठ होगा, जिस दिन प्रेम का बीज उत्पन्न होगा।"

पद (८३)

जबलौं सुधि बाकी या तन की।
तब लौ कहा प्रीत गोविन्द सौं, कोरी बात लगन की।।
कहा होत अगनी के तापे, खाक करत हो तन की।
विरहानल जब लौं नहीं ताप्यो, झूँठी बात तपन की।।
कहा होत या तन के भीजत, कलि भीजत नहीं मन की।
तब लगि कोऊ न पावत आली, रीझन श्याम सजन की।।
रहत विकार सदा ही छाये, विरती रहत ठगन की।
प्रेम लता जा उर नहीं लहरी, गति ठहरत क्यों मन की।।
जब लौं देह-भाव नहीं त्यागत, गति नहीं आत भजन की।
रहते अहम्-हृदय को पावत, प्रीति आनँदघन की।।
तन अरु तन-सम्बधिन सौं है, जब लगि प्रीती मन की।
तब लगि हरि सौं हेत कहाँ है, गति नहीं प्रेम पकन की।।
सब इन्द्रिन पै राज करत है, चाल कुटिल है मन की।
मदनमोहन बिन कौन बचावत, मींठी मार मदन की।।
जिनको ध्यान रहत तन-धन में, बात करत अवगुन की।
सो 'ब्रजदास' कबहु नहीं समझत, पीरा हरि-बिरहन की।।

जब तक इस शरीर की सांस शेष हैं, तब तक गोविन्द की प्रीति की बात कर लो; जिसके हृदय में प्रेमीरूपी लता नहीं है, तब तक भजन की गति नहीं आती है। ये मन बड़ा कुटिल है सर्व इन्द्रियों पर राज करता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "हर कोई भक्त की व्यथा को नहीं समझ सकता है।"

पद (८४)

नर! तेरी केहि विधि पार परै।
चौथेपन में भी स्वारथ को, भाव नहीं बिसरै।।

जनम-जनम ते देखत आयौ, जननी जठर जरै।
करि-करि कठिन कुकर्म जगत में, पुनि भव कूप परै।।
छिन-छिन में अपराध कमावै, बिन ही बात लरै।
निमिष-निमिष में जीव सतावै, करूणा नाहिं करै।।
दुक्खालय में सुख चाहत है, मन में मोद भरै।
हरि की आस छौड़ कर अजहों, जग की आस करै।।
बिनु सत्संग रह गयो कोरो, कौन सहाय करै।
'बिरजदास' तो में आछी बीती, का विधि ते उबरै।।

मैं जनम-जनम से देखता आ रहा हूँ, बार-बार जननी जठर में आवागमन हो रहा है। क्यों क्षण-क्षण अपराध कर रहा है? इस संसार में क्यों सुख चाहता है? ब्रजदासजी कहते हैं- "सत्संग के बिना तू कोरा ही रह गया है। अब, बता श्रीहरि के बिना कैसे पार उतर सकता है?"

पद (८५)

ते जन! केहि विधि हरि गुन गावहिं।
आत्म-कृपा जे जन नहीं कीन्ही, हरि किरपा कस पावहिं।।
मानव-जनम मोल नहीं समझयौ, उर्जा व्यर्थ नसावहिं।
भटकत-भटकत जनम बिगारयो, निशिदिन धूरि उड़ावहिं।।
सत्कर्मन ते मोड़ लियो मुख, दुष्कर्मन में जावहिं।
पाप-पोट भारी कर लीन्ही, बिरथा बोझ उठावहिं।।
ज्ञान-विराग जोग-जप-भगति, सबही व्यर्थ बतावहिं।
सेवा धर्म कबहू नहीं जान्यौ, निशिदिन सन्त सतावहिं।।
अपनो भलो आप नहीं सोच्यौ, कौन पुरुष समझावहिं।
छाँड़ि भजन, भोजन के पीछे, स्वन गति ते धावहिं।।
को 'ब्रजदास' करै हित उनको, बरबस कौन बचावहिं।
जानबूझ कर जे जन जग में, नित्य कुसंगति पावहिं।।

वे लोग हरि के गुण कैसे गा सकते हैं, जिन्होंने हरि-कथा नहीं सुनी है और मानव जनम मूल्य को नहीं

समझा है। भटकते-भटकते अनेकों जन्मों को नष्ट कर दिया, पाप-पोटली को व्यर्थ ही उठा रहा है, सेवा-धर्म को जानता ही नहीं है। ब्रजदासजी कहते हैं- "उसे कौन बचा सकता है? जो जान-बूझकर जगत के संग में जा रहा है।"

पद (८६)

साधो! गहन गति कर्मन की।
को मनीष उत्थान बतावै, जानै कौन पतन की।।
कुलटा कुटिल नारि सुख पावत, सतियाँ खान दुखन की।
दुर्जन दुसह प्रतिष्ठा पावत, निन्दा होत सजन की।।
करि कारी पंक्ति बैठा दी, कोयल हू कागन की।
हंस बिचारे होत तिरस्कृत, बनि आई बगुलन की।।
किमि उदार सुकृत करि पावै, हो न सकत है मन की।
कृपण-गेह कैसी गति दीन्ही, रहत कमी नहीं धन की।।
उद्भव और पराभव कब हो, विधि हु न जानत इनकी।
को जानै कब परै भुगतनी, करनी कोन जनम की।।
हा! 'ब्रजदास' कौन मुख कहिये, बिगरी बात अपन की।
पूजित भये गुनहीन जगत में, निदरत खान गुनन की।।

हे साधु! कर्मों की गति अत्यन्त गहन है, दुर्जन मनुष्य सुख पा रहे हैं और सज्जनों की निन्दा हो रही है। काग कोयल की पंक्तियों में बैठे हुये हैं और हंस तिरस्कृत हो रहे हैं बगुलों की बन आई है। ब्रजदासजी कहते हैं- "किस मुख से कहें ये बात तो अपनी बिगड़ी है। गुणों को कोई नहीं पूछ रहा है सब जगह अवगुण की जय-जयकार हो रही है।"

पद (८७)

निज में अगणित ऐब भरे री।
सुख-दुःख मिलत आपनी करनी, औरन दोष मढ़ै री।।
स्व-निन्दा सुनबे कौ साहस, कबहू नाहिं जुटै री।
साधु जनन को अपने मुख सौं, निदरत नाहिं थकै री।।

परमारथ ते हाथ छुड़ावत, स्वारथ ते लिपटैरी।
औरन ठगत फिरत सब कोई, निज को कौन ठगै री।।
औरन ऐब टटोरत डोलै, बीच बजार बकै री।
ऐसो धीर बीर कोई बिरला, जो निज दोष लखैरी।।
औरन काम कभू नहीं आवत, निज के काम भगै री।
अपने कारज हाँ चाहत है, औरन काज नटै री।।
हा 'ब्रजदास' आपने अन्तर, केहि विधि सुख उपजै री।
औरन वसत दिखत पीतल की, निज की स्वर्ण दिखै री।।

मनुष्य में कभी-भी निज निन्दा सुनने का साहस नहीं होता है और साधुजन की निन्दा करते हुए थकता नहीं है। परमार्थ से हाथ छुड़ाकर स्वार्थ में लिपटे रहते हैं। दूसरों के दोष निकालते हैं, कोई विरला ही धैर्यवान होगा; जिसे स्वयं के दोष दिखाई देंगे। ब्रजदासजी कहते हैं- "औरों को पीतल समझ रखा है और स्वयं को स्वर्ण मान बैठे हैं।"

पद (८८)

का दिन! अपने दोष लखैगो।
घर-घर फिरत करत पर निन्दा, कबलौ यूँ भटकैगो।।
का दिन अंतर की गति पई है, का दिन सुख उपजैगो।
झुकत फिरत झूठे जग आगै, कब निज और झुकैगो।।
आत्म-तत्त्व को, मद के कारण, कब लौं अहित करैगो।
विनय भाव ते सब कुछ मिलि हैं, दुष्ट अहम् का दैगो।।
इन ढिंग-उन ढिंग राम खजानो, कब लौं यूँ भाखैगो।
रे मतिमन्द! काऊ दिन तू भी, भगवद्-रस चाखैगो।।
काँकर-पाथर फिरै खोजतो, कब पारस परखैगो।
बीति जात 'ब्रजदास' उमरिया, रे सठ! कब सुधरैगो।।

मनुष्य कब अपने दोषों को देखेगा? घर-घर जाकर दूसरों की निन्दा कब तक करेगा? और इस प्रकार कब तक भटकता फिरेगा? झूठे जग के सामने तो झुकता है, संत-सज्जनों

के सामने कब झुकेगा? विनय भाव से सब कुछ मिल जाता है। कब तू भागवत रस को चाहेगा? ब्रजदासजी कहते हैं- "कंकड़-पत्थर छोड़कर पारस कब चाहेगा?"

पद (८९)

मैं अवगुन की खान कहाँ ते सदगुन लाऊँ।
मो सौं तो जग ही नहीं रीझै। का करतार रिझाऊँ।।
कवन भांति अब करूँ इस्तवन, ज्ञान-गिरा कित लाऊँ।
रे नँदनन्दन! सुन मोरा क्रन्दन, अटपट बैन सुनाऊँ।।
तू देवत मोहि हीरे-मोती, मैं कौड़ी संग धाऊँ।
देख रे देख कुलच्छन मेरे, नाम-निधि बिसराऊँ।।
उड़-उड़ परत माजनै माँटी, निशदिन धूरि उड़ाऊँ।
संत चरण की माँटी माथै, मेलत ही सकुचाऊँ।।
जग-पद गरिमा आड़े आ गयी, सेवा कर नहीं पाऊँ।
अहम् भाव मोते बिसरत नाहीं, का विधि दास कहाऊँ।।
बन्यौ फिरूँ 'ब्रजदास' शिवोऽम, रहस समझ नहीं पाऊँ।
सोहम्-सोहम् कहतो डोलूँ, दासोहम् बिसराऊँ।।

हे प्रभु! मैं अवगुणों की खान हूँ, सद्गुण कहाँ से लाऊँ। मैंने हरिनाम रूपी निधि को बिसरा दिया है। मेरा तो अहम् भाव ही नष्ट नहीं होता है तो फिर किस प्रकार से दास्य भाव आयेगा? ब्रजदासजी कहते है- "सोऽहं सोऽहं तो कहता फिरता हूँ, लेकिन दासोऽहं दासोऽहं को भुला दिया है।"

पद (९०)

मो सम कौन मूढ़ या जग में।
मानुष जनम मोल नहीं समझयौ, भ्रमित फिरयौ मारग में।।
जग चिन्तन सों कबहु न थाकयौ, विषय भरयौ रग रग में।
कृष्णकार भयो नहीं कबहू, मो मन प्रेम के मग में।।
बिन गुरु का परिवर्तन आवै, मन रूपी या ठग में।
केहि विधि अनघ रहूँ मोरे स्वामी, विरती लागी अघ में।।

कवन भाँति रस को आस्वादन, करतो कुटिल उमंग में।
मौन होय मेरो मन आली, बैठयो नाहिं अलग में।।
का सौं कहूँ आपनी करनी, सोच करूँ पग-पग में।
करि कुसंग अनहित कर लीन्हों, अपने हाथन जग में।।
हरि निर्मित 'ब्रजदास' बावरे, कहा कमी है जग में।
संतन नै तो बहु समझायौ, मैं ही पर्‌यौ कुसंग में।।

हे प्रभो! मेरे समान मूढ़ इस जगत में कौन होगा? मानव जनम मूल्य को तो समझा नहीं; जगत के चिन्तन से कभी थका नहीं, विषय तो रग-रग में बसा हुआ है। बिना गुरु के परिवर्तन नहीं आ सकता है तो किसप्रकार से रस का आस्वादन करूँ? ब्रजदासजी कहते हैं- "संतों ने बहुत समझाया है; किन्तु मैं ही जन संग में पड़ गया हूँ।"

पद (६१)

मैं अति भाव-विहीन, कहा चरनन में जाऊँ।
मैं मति-मन्द-मलीन, कहा करि संत रिझाऊँ।।
राग द्वेष की खेती करली, दिन-दिन फसल बढ़ाऊँ।
खेत हिया को कोरो नाहीं, किहि विधि प्रेम उगाऊँ।।
सुकृत कबहु न कीन्ह, कहा चरनन में जाऊँ।
सदा चलै मेरे कपट कतरनी, निश्छलता किमि लाऊँ।।
सेवा-चोर सदा को हूँ मैं, कृपा कौन की पाऊँ।
सकल गुनन ते हीन, कहा करि संत रिझाऊँ।।
पापी-तापी नित अपराधी, कितने ऐब गिनाऊँ।
ता पै भी सतगुरु अपनायो, कवन भाँति गुन गाऊँ।।
सब दासन में दीन, कहा चरनन में जाऊँ।
रोम-रोम मेरो ऐब पिटारो, का संग प्रीत दिखाऊँ।।
को 'ब्रजदास' सुनै मोरे औगुन, का कूँ जाय सुनाऊँ।
मैं विषयन में लीन, कहा करि संत रिझाऊँ।।

मैं अत्यन्त भाव-विहीन हूँ, फिर आपके श्रीचरणों में

कैसे जाऊँ? अति मति मन्द हूँ, कैसे संत सान्निध्य कर सकता हूँ? राग-द्वेष की खेती तो कर ली है और फसल को बढ़ा रहा हूँ। हृदय रूपी खेत स्वच्छ नहीं किया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं अपने अवगुणों को किसे जा कर सुनाऊँ? सदा विषय-रस में ही तल्लीन हूँ।"

पद (६२)

प्रभु मोहे जाति-बार कब करिहौ।
कबलौं स्वामी मोर अहम् को, कुल अभिमान निकरिहों।।
इहिं कुलकार-मकार के बन्धन, कबलौं मोहि जकरिहौं।
छाँड़ि चरन औरन के का दिन, तोर चरन उर धीरहों।।
करि-करि जाति-पाँति की बतियाँ, कब लौं व्यर्थ झगरिहौं।
तजि कंचन-कीरति को मारग, प्रेम को पंथ पकरिहौं।।
निर्बल-दीन-हीन दुखियन ते, बिनु ही काज अकरिहौं।
ऊँच नींच को भेद राखि उर, कबलौं पशुवत लरिहौं।।
जग प्रपञ्च का दिन छूटैगो, कुल-मद कसन जरिहौं।
विनय करत 'ब्रजदास' बावरो, मोर अहम् कब जरिहों।।

हे प्रभो! मुझे वर्ण अभिमान से कब दूर करोगे? वर्ण की बातों को कर-कर व्यर्थ की झगड़ता हूँ। कञ्चन कीर्ति का मार्ग छोड़कर प्रेम-पंथ को कब पकड़ूँगा? जग प्रपञ्च कब छूटेगा? ब्रजदासजी कहते हैं- "ये अभिमान कब गलित होगा?"

पद (६३)

शरणागत राखि हरी।
तुम बिन मेरो कौन खिवैया, भव बिच नाव परी।।
मन मलीन अति दीन-हीन हूँ, करनी कछु न करी।
दिन-दिन भारी होवत जावै, पापन की गठरी।।
का के द्वारे लैकेर जाऊँ, अँखियाँ नीर भरी।
दुक्खालय है ये जग सारा, सुख नहीं एक घरी।।
जगत-प्रलोभन खींचत मोहे, विषयन चसक परी।

तोर कृपा बिनु जीति न जई है, तव माया जबरी।।
काहे देर करत हो स्वामी, सुनियो नाथ हरी।
का 'ब्रजदास' सौं दीन तारबो, कौन सी बात बरी।।

हे हरि! मुझे शरणागत रखो तुम्हारे बिना कौन मेरा खेवनहार है। भव के बीच में मेरी नाव पड़ी हुई है। मैं अति मलिन दीनहीन हूँ कुछ भी नहीं कर पाया हूँ। दिन-दिन भारी होता जा रहा है जगत का प्रलोभन खींच रहा है। तुम्हारी कृपा के बिना ये माया जीती नहीं जा सकती। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे प्रभो! अब आप क्यों देर लगाते हो?"

पद (६४)

अब मोहे राखि शरण गोपाल।
अब तक जो बीती सो, अब न तजो नँदलाल।।
कोटिक जनम गँवाये माधव, झुलसि रह्यौ भव ज्वाल।
अब की बेर देर मत कीजौ, लीजौ मोहि संभाल।।
देव अनेकन पूजि थक्यौ मैं, सुख न मिल्यौ केहि काल।
भटकि-भटकि सब द्वारन हारयौ, सब विधि भयो निढ़ाल।।
का ते कहूँ कौन ढिंग जाऊँ, बैरी बहुत विशाल।
चार चोर अरु पाँच-पचीसन, मिलि लूटयौ नँदलाल।।
कवन भाँति हो रक्षण मोरा, तो बिन हे प्रतिपाल।
लिये कुठार कठिन कर माहीं, डोलत काल-कराल।।
जित 'ब्रजदास' गयौ तित निदर्यौ, कोऊ न कीन्ह निहाल।
मो बिगरे को कौन रखावै, तो बिन करूण कृपाल।।

हे गोपाल! मुझे अपनी शरण में रख लो। अब तक जो बीत गई सो बीत गई, करोड़ों जनम गंवा दिये अब तो दूर मत कीजिये। अनेक देवों को पूज लिया सुख अभी तक किसी काल में नहीं मिला।

ब्रजदासजी कहते हैं- "जहाँ भी गया निहाल भी नहीं हुआ। मुझ बिगड़े को तो केवल आप ही रख सकते हैं।"

पद (६५)

को पै अभिवादन कूँ जईये।
हरि शरणागति जब पा लीन्ही, को त्यौहार मनईये।।
कासौं प्रेम, प्रीत हो का सौं, कासौ नेह जतईये।
हरि दासन को संग छाँड़ि कैं, को राजा पै जईये।।
गमनागमन व्यर्थ में करिकैं, गणिका की गति पईये।
जन-जन को मन राजी करते, काहे बाँझ कहइये।।
कासौं मिलनौ-जुलनो कासौं, कासौं प्रीत बढ़ईये।
निशदिन ही त्यौंहार आपनै, नित ही मंगल गईये।।
दौरि-दौरि क्यों पग तोरत है, या जग ते का लईये।
को अमीर-उमराव हरि सम, जा सौं भेंट करईये।।
'बिरजदास' का धरयौ जगत में, काहे मन भटकईये।
गोविन्द के पद-पल्लव तजि के, कासौ आस लगईये।।

अब मैं किसके पास अभिवादन को जाऊँ? जब हरि की शरणागति पा ली है, हरि के दासों का संग छोड़कर अब किस राजा के पास जाऊँ? एक-एकजन को राजी करते-करते जीवन निकल गया। अब, ऐसा कौन धनवान है जिससे मुझे भेंट करने जाना होगा? ब्रजदासजी कहते हैं- "इस जगत में क्या धरा है, जिसके कारण मन भटकायें। गोविन्द चरण को प्राप्त किया फिर अब किसकी आश करें?"

पद (६६)

प्रभु को प्रिय लागै सोई करिहौं।
हानि-लाभ-सुख-दुःख-यश-अपयश, सब में समता धरिहौं।।
गुरू-प्रताप ते या जीवन में, ऐसी जुगती करिहौं।
बाह्य जगत को तन सौं बरतूँ, मन सौं माहिं उतरिहौं।।
आपा खोय अणू हो जाऊँ, जीते जीही मरिहौं।
को बाँधै अब मोह-पाश में, जीवन मुक्त बिचारिहौं।।
सकल चराचर रूप हरि को, ऐसी मति उर धरिहौंहों।

सारो ही जग अपनो लागै, बैर कौन संग करिहौं।।
जो होवत है, मौज हरि की, अस विचार नित करिहौं।
देह-भाव ते उपर उठ कैं, दृष्टा-भाव पकरिहौं।।
गुरु-प्रसाद 'ब्रजदास' पायकै अपनी झोली भरिहौं।
नाम-निधि के बल मोरी आली, फिर भव कूप न परिहौं।।

जो प्रभु को प्रिय लगेगा मैं अब वही करूँगा। हानि-लाभ, सुख-दुःख सबमें समता करूँगा। गुरु कृपा से ऐसी युक्ति करूँगा, कि निरन्तर गोविन्द चिन्तन करूँगा। ऐसी बुद्धि रखूँगा कि जो हो रहा है वह श्रीहरि की ही इच्छा है। देह-भाव से ऊपर उठकर सर्वत्र भगवद् दृष्टि ही करूँगा। ब्रजदासजी कहते हैं- "हरिनाम निधि के बल पर भवकूप में नहीं पड़ूँगा।"

पद (९७)

माया! अब दाव न लागै तेरो।
मधुसूदन-मायापति मोहन, नाथ भयो है मेरो।।
द्वार खड़ी सिर धुनती रहियो, कछु न लुटैगो मेरो।
अब की बेर बनी कुछ ऐसी, बस न चलैगो तेरो।।
उनको कहा बिगार करैगी, करलैं जतन घनेरो।
हरि के सुमिरन में ही बीतै, जिनको साँझ सवेरो।।
मोह जनित जीवन पै जाकैं, करियो जादू तेरो।
उनके तू नेरे क्यूँ आवै, जिनके गोविन्द नेरो।।
जा री जा उनके घर जा री, जो नाम न लैं हरि केरो।
गौर कृष्ण के दासन द्वारे, काहे लगावत डेरो।।
त्रिविध ताप 'ब्रजदास' न ब्यापी, आनँद भयौ घनेरो।
जब ते मोहि कियौ गुरुवर ने, वैष्णवजन को चेरो।।

हे माया! अब तेरा जोर नहीं चलेगा। मायापति मधुसूदन मैंने सान्निध्य ले लिया है, तू द्वार पर खड़ी रहना मेरा कुछ नहीं कर पायेगी। इस बार कुछ ऐसी बनी है कि तेरा कुछ वश ही नहीं चलेगा। तू उनका क्या बिगाड़ लेगी, जिनके रक्षक गोविन्द

हैं? विमुख लोगों के घर पर ही जा। श्रीकृष्ण व श्रीगौरांग के दासों के द्वार पर क्यों ढेरा लगाये बैठी है? ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव ने अपना बना लिया है और वैष्णवजनों का सेवक बना लिया है।"

पद (९८)

अब मैं कौन देव पै जाऊँ।
एक आस गोविन्द की तजि के, का की आस लगाऊँ।।
गीता जैसो ग्रंथ त्याग कर, कौन शास्त्र चित लाऊँ।
भगवत वाणी धारण करि के, धीर-मति हो जाऊँ।।
को कृपाल गोपाल सरीखो, जा को जाय मनाऊँ।
बिनु सेवा जो द्रवत जीव पर, गोविन्द सौं कित पाऊँ।।
मातृ भाव सौं लखत पूतना, कवन भांति गुन गाऊँ।
असुरन देत गति सुर जैसी, अस करूणा कित पाऊँ।।
'रसो वै सः' वेद पुकारत, सुनि अपने उर लाऊँ।
कृष्ण तत्त्व को छाँड़ि कहाँ ते, प्रेमा-भगति पाऊँ।।
एक ही अब 'ब्रजदास' वाञ्छना, एक ही भाव रहाऊँ।
गद्‌गद् गिरा, नैन जलभर कैं, गुन गोविन्द के गाऊँ।।

अब मैं किस देवता के पास जाऊँ? गोविन्द की आशा त्यागकर किसकी आशा लगाऊँ? गीता जैसे ग्रंथ को त्याग किस शास्त्र में चित्त लगाऊँ? भगवान् की वाणी धारण करके निर्मल मति हो गई है। गोपाल जैसा दयालु कौन हो सकता है? वे तो असुरों को भी सद्‌गति प्रदान कर देते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "अब तो एक ही भाव है- वाणी गद्‌गद् हो, नेत्रों में जल हो और गोविन्द गुण गाता रहूँ।"

पद (९९)

माई री मैं तो अविचल नाथ वर्‌यौ।
ऐसे पति को वरण कियौ री, अचल सुहाग कर्‌यौ।।
जा के पात कबहु नहीं सूखत, पुहुपन रहत भर्‌यौ।

ऐसे तरू की छाँह गही री, निशदिन रहत हर्‌यौ।।
त्याग्यौ राग, द्वेष तजि दीन्हो, मन को मान मर्‌यौ।
शीश काटि लै धरयौ हथेरी, तब अनुराग कर्‌यो।।
मोरी मांग सजी अति नींकी, प्रेम-सिंदूर भर्‌यौ।
ऐसौ रंग लाग्यो मोरे केशन, कबहू नहीं उतर्‌यौ।।
हरि-फैंटा संग मन-चूनरिया, बन्धन बाँधि धर्‌यौ।
अविनाशी सौं करि गठजोरो, अमर सम्बन्ध कर्‌यौ।।
'बिरजदास' पहुँची रंगमहलन, नैनन प्रेम भर्‌यौ।
दौरि पिया गलबैंया दीन्ही, लखि यमराज डर्‌यौ।।

हे सखि! मैंने अविचल नाथ को पा लिया है। अचल सुहाग को प्राप्त किया है। ऐसे वृक्ष की छांव तले बैठी हूँ जो दिवानिशि हरित ही रहता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीकृष्ण के रंगमहल में पहुँचने पर यमराज भी भयभीत होता है।"

पद (१००)

अब मैं का संग बैर रखाऊँ।
सकल चराचर में जब आली, अपनो हि रूप लखाऊँ।।
का संग लरूँ लराई साधो, का संग रार मचाऊँ।
सारो जगत मीत सौं लागै, बैरी कौन बताऊँ।।
सारे पथ उजियारे लागैं, भटक कभू नहीं पाऊँ।
उदय भयो सद्‌भाव को सूरज, तिमिर कहाँ ते लाऊँ।।
संत चरन ते निकसी सुरसरी, मज्जन करि सुख पाऊँ।
सत्संग के साबुन ते आली, बैर भाव धो लाऊँ।।
एक ही राम बिराजै सब घट, दूजो कौन बताऊँ।
एक ही दीपक की ज्योति तैं, लाखों दीप जलाऊँ।।
नित 'ब्रजदास' रहूँ आनन्द में, गोविन्द के गुन गाऊँ।
जो देखो सोई अपनो लागै, कौन परायो पाऊँ।।

अब मैं किसके साथ शत्रुता निभाऊँ? सर्वत्र ही मेरे इष्ट हैं, सम्पूर्ण जगत ही मेरा मित्र है, मेरे प्रभु ही सभी में

विराजमान हैं, दूजा और कौन हो सकता है? एक ही दीपक के ज्योति सभी में प्रकाशित हो रही है।

ब्रजदासजी कहते हैं– "अब मैं आनन्दपूर्वक गोविन्द गुणगान करता हूँ। जिसको देखता हूँ वोही अपना लगता है पराया तो कोई दिखता ही नहीं है।"

पद (१०१)

जब ठान लई ब्रज जावन की, नित लगन लगी वृन्दावन की।।
जब श्याम मिलन कूँ निकस परी, तब लोक लाज की आन कहाँ।
पैरन में घूँघरू बाँध लिये, अब बात नहीं समुझावन की।।
पट-पीत-पीताम्बर धार लिये, कर में तुलसी की माल लई।
यमुना-तट बैठि करूँ सुमिरन, अरू सुधि न तजूं मन भावन की।।
जमुना जल पिऊँ निज कर ते, ब्रज वासिन-टूक धरूँ उर में।
सब खटरस व्यंजन त्याग दिये, अब बात कहाँ है स्वादन की।।
अब हाथ-सुमरनी कर-करूवा, अरू तन पर कंथा धार लियौ।
पग की पाहुँनिंया त्याग दई, और राह लई ब्रजकानन की।।
स्वर्गन को हम क्यूं जावें जी, का काम हमें नन्दन बन सौं।
अब वन-उपवन सब छाँड़ि दिये, बस बात करो वृन्दावन की।।
का काम कुटिल जग सौं अपनो, अब काके गुन-औगुन गावैं।
'ब्रजदास' लगन लागी अब तो, बस गुन गोविन्द के गावन की।।

जब ब्रजधाम जाने की ठान ली है, तब से श्याम मिलन की अभिलाषा तीव्र हो गई है। लोकलाज मिट गई है, पैरों में घूँघरू बाँध लिये हैं, किसी की बात अब समझ में नहीं आती है? हाथ में तुलसी-माला है, यमुना पुलिन पर बैठ उसे से उनके नाम का चिन्तन करती हूँ। ब्रजवासियों के घर से मध ुकरी मांग यमुना जल पीऊँगी, हमें स्वर्ग से क्या कार्य। हमें तो केवल वृन्दावन धाम की ही बात करनी है।

ब्रजदासजी कहते हैं– "इस कुटिल जग से क्या कार्य है, हमें तो गोविन्द गुण गाना है।"

पद (१०२)

करूणामय ठाकुर मेरो।
मैं जान्यौ कहीं दूर बसत है, वो निकस्यौ अति नेरो।।
को समर्थ वा जैसो जग में, जा को कीजै हेरो।
जनम-जनम को झगरौ हरि बिन, का सौं जात निवेरो।।
वाको नाम अनन्त सुखदाई, छिन में करत उजेरो।
सकल द्वन्द मिटते से दीखैं, जब हरिनाम उचेरो।।
मैं मतिमन्द और कछु जान्यौ, चकित भयौ मन मेरो।
अंग-संग ही रहत साँवरो, डोलत नेरो-नेरो।।
काम-क्रोध-मद, लोभ, मोह को, हट्यौ-हिया ते डेरो।
'बिरजदास' जा दिन ते कीन्हो, चित् चरणन को चेरो।।

मेरे ठाकुर अत्यन्त करूणामयी हैं। मैं समझता था कि वे दूर विराजमान हैं; किन्तु वे मेरे निकटतम ही हैं। हरि के बिना जनम-जनम का झगड़ा बना हुआ है। उनका नाम अनन्त सुख से परिपूर्ण है। जब से हरिनाम उच्चारण किया; सकल द्वन्द मिट गये हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "अब उनके श्रीचरणों में चित्त लगा लिया है। काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-ईर्ष्या का ढेरा हटा दिया है।"

पद (१०३)

गोविन्द हम कीन्हीं तुम जानी।
तुम कीन्हो कोऊ जानत नाहीं, सकल जीव अज्ञानी।।
तुम सौ को दातार जगत में, कौन आप सौं दानी।
तुम कीन्ही तो ऐसे हितकी, का सौं जात बखानी।।
सकल दोष-आगार बने हम, करत रहे मनमानी।
तापै भी तुम करूणा बरती, छाँड़ि दिये अभिमानी।।
तुमरी कृपा करन की रीति, कबहू समझ न आनी।
सकल लाभ कीन्हे हैं तुमने, हम कीन्ही नित हानी।।

'बिरजदास' पै बिरद विचारो, सुनियो मोरी बानी।
तुम सौ कहा छुपि है मन की, सब जानी-पहचानी।।

हे गोविन्द! सभी जीव अज्ञानी हैं, तुम जैसा दाता जगत में कौन होगा? हम तो दोषों के भण्डार हैं, सर्वदा मनमानी करते रहते हैं। आपने सम्पूर्ण लाभ किये हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "तुमसे हमारी कुछ भी नहीं छुपी है, आप सबकुछ जानते हैं।"

पद (१०४)

गोविन्द जापै कृपा तिहारी।
मगन होय बिचरै या जग में, उर में आनँद भारी।।
सकल प्रपञ्च मिटाय जगत के, लियौ चरन बैठारी।
उरझयो जीव लियौ सुरझाई, अभय कियौ भयहारी।।
मान तज्यौ अपने जत काजै, छिन-छिन लियौ सँभारी।
उलटो किये होत है सुलटो, जग में महिमा भारी।।
श्याम सरीखो को करूणामय, तीनहूद्द लोक मँझारी।
दासन कै औगुन नहीं देखत, गुन गाहक गिरधारी।।
चितृ 'ब्रजदास' उचित रंग लाग्यौ, हित करि लियो उबारी।
सकल दरिद्र नसाये मोरे, कैसी दया बिचारी।।

गोविन्द जिस पर कृपा करते हैं, वह आनन्दमग्न होकर जगत में विचरण करता है। उसके सकल प्रपञ्च मिट जाते हैं, आप उलझे हुए जीवन को सुलझा देते हैं, भयभीतों को अभय कर देते हैं। श्याम जैसा करूणामय तीनों लोकों में कोई नहीं है। आप दासों के अवगुण नहीं देखते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "आपने ऐसी दया की है- सम्पूर्ण दुःख नष्ट कर दिये हैं।"

पद (१०५)

हरि तज का संग प्रीत करूँ।
गोविन्द सो कोऊ दीखत नाहीं, जा को जाय वरूँ।।
थोथी मान-बड़ाई खातिर, अपनो अहित करूँ।

जग की कूड़ी प्रीत के काजे, कयों भव-कूप परूँ।।
जननी जठर जरूँ अब कब लौं, जनमूं और मरूँ।
कयों नहीं माधव सौं वर पाके, अचल सुहाग करूँ।।
को करूणामय ब्रज-ड़ाकुर सौ, का के पाँव परूँ।
ब्रज रज तज अब ठौर कहात्र है, जापै शीश धरूँ।।
भाव देह 'ब्रजदास' अनोखी, अंतर मिलन करूँ।
गोविन्द सौं जब डोर बाँध ली, यम सौं काहे डरूँ।।

हरि को छोड़कर किसके साथ प्रीति करूँ? गोविन्द जैसा कोई दिखाई भी नहीं देता। जिसके पास जाऊँ जगत की प्रीति कूड़े के समान है; फिर भवकूप में जाकर क्यों पड़ूँ? करूणामय ठाकुर जैसा कौन होगा- जिसके चरणों में जाऊँ? ब्रजदासजी कहते हैं- "जब गोविन्द से प्रीति बाँध ली है, तो यमराज से क्यों डरूँ?"

पद (१०६)

रहिये हरि चरनन की छाया।
जिनकी छाँह काल नहीं व्यापत, दूर रहत है माया।।
अनन्त गुनन की खानि बनत है, औगुन देत नसाया।
सकल विकार हरि हर लेवत, कंचन होवत काया।।
कहा धर्‌यौ है थोथे मद में, काहे मूल गँवाया।
सकल मनोरथ पाय गया वो, चरण-शरण जो आया।।
हरि चरणन की कृपा अनूठी, अधम अभय-पद पाया।
सठ मन सत्संगत ते सुधरयौ, जग में संत कहाया।।
सकल लाभ पा लीन्हे छिन में, उर में आनन्द छाया।
'बिरजदास' सुनि बिरद रावरो, हरि शरणागत आया।।

श्रीहरि के चरणछाया में रहना चाहिये। जिनकी छाया से माया दूर भागती है। वे अनन्त गुणों की खान है, सम्पूर्ण अवगुणों को नष्ट कर देते हैं। मिथ्या अभिमान में क्या रखा है? हरि की शरण से जीव अभय पद को प्राप्त कर लेता है।

मन सत्संग से सुधर जाता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "हरि की शरणागति हृदय में आनन्द वर्षा कर देती है।"

पद (१०७)

जे जन हरि संग प्रीत लगाई।
शनैः शनैः तिनके सब बन्धन, आप स्वयं कट जाई।।
रंगत रंगत ऐसो रंग जावत, मन हरि-रंग रंग जाई।
बनत-बनत ऐसी बन जावत, बहुरि बिगर नहीं पाई।।
रटत-रटत हरिनाम रात दिन, कर्म-रेख मिट आई।
कटत कटत मग के सब कंटक, शनैः शनैः कट जाई।।
मिटत-मिटत ऐसो दिन आवत, दुःख-दारिद मिट जाई।
सहज-सहज सारे सुख होवत, सहज मिलत यदुराई।।
करत-करत हरिनाम प्रेम सौं, मन चंचल ठहराई।
घटत-घटत ऐसो छिन आवत, घट-विकार घट जाई।।
भजत-भजत 'ब्रजदास' भाव सौं भगति-बेलि बढि आई।
बँधत-बँधत हरि सौं बँध जावत, जगत-जाल छुटि जाई।।

जिन लोगों ने हरि के साथ प्रीति लगाई है, उनके सम्पूर्ण बन्धन कट जाते हैं कभी-भी उसकी बिगड़ती नहीं है। हरिनाम रटन से प्रारब्ध कर्म की रेखा भी मिट जाती है, मार्ग के सम्पूर्ण कंटक कट जाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "भक्ति की बेल बढ़ जाती है, तो जगत बन्धन छूट जाता है।"

पद (१०८)

राधा तो बिन गोविन्द आधा।
जाके चरनन जत बंध्यो है, सोई निज चरनन बाँधा।
आगम-निगम पार नहीं पावत, अनँत-अपार-अगाधा।।
जगत-वन्द्य करते तव वन्दन, कौन देव आराधा।
मूर्तिमान रस प्रेम स्वरूपा, कृष्ण-प्रिया आह्लादा।।
सर्वेश्वर को बस करि राखत, कवन मंत्र को साधा।
'बिरजदास' है शरण लली की, हरहु मोर भव-बाधा।।

श्रीराधाजी के बिना तो गोविन्द भी आधे हैं। जिनके चरणों से जगत बँधा है वे श्रीकृष्ण श्रीराधा के चरणों से बँधे हैं। आगम-निगम उनका पार नहीं पाते हैं, वे अनन्त अपार हैं। जगतबन्धु प्रभु भी उनकी वन्दना करते हैं। श्रीराधाजी मूर्त्तिमान प्रेम स्वरूप शक्ति हैं। वे सर्वस्व प्रभु को अपने वश में करती हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैंने वृषभानु नन्दिनी की शरण ले ली है। अब भवबाधा मिट जायेगी।"
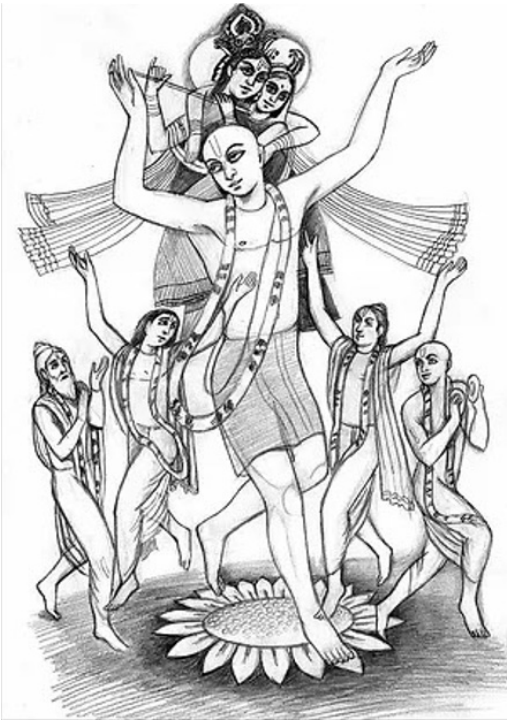
।। ग्रंथ सम्पूर्ण ।।